अनुक्रमणिका

समर्पण

जिनके भोलेभाले मुखों पर कमल की सी
कोमलता झलका करती है,
जिनके हृदय-मन्दिर परमात्मा के पावन
भावों से भरे हुए हैं,
जिनके मुखारविन्द से सदा सरसता ही
सरलता चुआ करती है,
जिनके निश्छल बर्त्ताव और कोमलालाप
से मुझे अधिक आनन्द मिलता है,
लीलामय के अवतार, अपने उन्हीं प्यारे
बच्चों के नन्हे नन्हे हाथों में,
इस 'बाल-रामायण' को
समर्पण करता हूँ।

रामजीलाल शर्म्मा

धन्यवाद

सर्वशक्तिमान् परमात्मा को धन्यवाद देने के पश्चात्, हम, हिन्दी भाषा के परम सहायक, इंडियन प्रेस के स्वामी श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष, को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते।

उक्त प्रशंसनीय बाबू साहब को हम ही क्या, आज हिन्दी-साहित्य के प्रायः सब ही प्रेमी-जन मुक्तकण्ठ से धन्यवाद दे रहे हैं।

सचित्र "रामचरितमानस" का अद्वितीय और मनोरम संस्करण और सुलेखालङ्कारों से विभूषित और मनोहर चित्रादि से सुसज्जित "सरस्वती" मासिक पत्रिका का प्रकाशन आदि काम, जो आज हिन्दी-साहित्य की अपूर्व शोभा बढ़ा रहे हैं सब आपके ही महोद्योग का फल हैं।

आशा है, हिन्दी-पाठक आपके प्रकाशित ग्रन्थों को सादर ग्रहण करके आपके उत्साह को और भी अधिक बढ़ावेंगे।

रामजीलाल शर्म्मा

प्रथमावृत्ति की भूमिका

स परिवर्त्तन शील संसार में (सृष्टि के आरम्भ से आज तक) असंख्य प्राणी जन्मे और मरे। परन्तु जितना नाम भारतवर्षीय इक्ष्वाकु-कुल में रघुकुल दीपक महाराजा दशरथ के पुत्रों (राम, लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न) का हुआ उतना आज तक और किसी का नहीं हुआ। जिस प्रकार समस्त पुरुषों में धर्माचरण के लिए, रामादि भ्रातृ चतुष्टय विख्यात हैं उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रियों में जनक-नन्दिनी श्रीसीताजी का नाम है। सच पूछिए तो जैसा धर्ममय और शिक्षाजनक चरित इन पाँचों का है वैसा संसार भर में और किसी का है ही नहीं। इसी से इनको मर्यादा पुरुषोत्तम भी कहते हैं।

इनके चरित में मातृधर्म, पितृधर्म भ्रातृधर्म, स्त्रीधर्म राजधर्म, आपद्धर्म, मित्रधर्म और युद्धधर्म आदि समस्त धर्मों के प्रत्यक्ष और अनुपम उदाहरण भरे हुये हैं। बाल रामायण के पढ़ने से इन सब प्रकार के धर्मों का ज्ञान हो जाता है।

इन महात्माओं के जीवन-चरित को, आदि कवि श्रीवाल्मीकि मुनिजी ने, संस्कृत की मनोहर कविता में और श्रीरामचन्द्रजी के अनन्यभक्त गोस्वामी तुलसीदासजी ने हिन्दी-भाषा की मनोरम कविता में, लिखा है। वास्तव में पूर्वोक्त दोनों कवियों ने इन अपूर्व ग्रन्थों का निर्माण कर संसार का बहुत बड़ा उपकार किया है।

परन्तु, जो बालक, वाल्मीकीय रामायण और राम चरितमानस को नहीं समझ सकते वे इस जीवन-चरित की पवित्र शिक्षा और इसके अमूल्य सदुपदेश से वञ्चित रह जाते हैं। इसलिए हमने उनके ाभ के लिए सरल हिन्दी-भाषा संक्षिप्त रामचरि लिखा है, जिसका नाम "बालरामायण" रक्खा है

आशा है, हमारे रामचन्द्र के प्रेमी, भारतवासी भ्राता अपनी सन्तान को इसके पढ़ने की प्रेरणा करेंगे और उनके जीवन को आदर्श बनाकर पुण्य और यश के भागी होंगे।

रामजीलाल शर्म्मा

द्वितीयावृत्ति की भूमिका

हमें यह देख कर बड़ा आनन्द हुआ, कि हमारी 'बालरामायण' पुस्तक की प्रथमावृत्ति की एक हज़ार कापियाँ, कोई एक ही साल में, सब बिक गईं। इससे हमें दो बातों का अनुभव हुआ। प्रथम तो यह कि इस पुस्तक की सरल लेखन प्रणाली हिन्दी पाठकों को पसन्द आई। दूसरी यह कि भारतवासियों की रुचि, अब, अपनी मातृभाषा हिन्दी के पुस्तकों की पठनपाठन की ओर विशेष खिंचने लगी है। अपनी मातृभाषा हिन्दी का विशेष आदर होते देख कर, हमीं को नहीं, सभी हिन्दी भाषा-भाषियों को अधिक आनन्द होगा।

इस दूसरी आवृत्ति में हमने जहाँ तहाँ उचित संशोधन भी कर दिया है। कई जगह हमने कुछ घटाया बढ़ाया भी है। आशा है, हिन्दीपाठक इसे और भी अधिक पसन्द करेंगे।

रामजीलाल

तृतीयावृत्ति की भूमिका

हमें यह प्रकाशित करते अत्यन्त हर्ष होता है कि बालरामायण की द्वितीयावृत्ति प्रथमावृत्ति से भी जल्द बिक गई।

यह देखकर हमें और भी अधिक हर्ष हुआ है कि गवर्नमेंट ने हमारी 'बालरामायण' सिविलसर्विस परीक्षार्थियों के पढ़ने के लिए नियत करदी है, यही नहीं, विहार प्रान्त की टेक्स्टबुककमेटी ने भी हमारी पुस्तक हाई इँगलिश स्कूल में जारी कर दी है। इसके सिवा सर्व साधारण हिन्दी भाषा-भाषियों ने भी उक्त पुस्तक का जैसा कुछ आदर किया है उसके लिए हम उन महाशयों के परम कृतज्ञ हैं।

इस तृतीयावृत्ति में भी हमने जहाँ तहाँ कुछ संशोधन किये हैं। आशा है, पाठक इस पुस्तक के प्रचार करने में पहले से भी अधिक प्रयत्न करेंगे।

विनीत,
रामजीलाल शर्म्मा

बालरामायण

बाल-काण्ड

इस काण्ड में—राजा दशरथ का पुत्रार्थ यज्ञ करना, रामादि चारों भ्राताओं का जन्मोत्सव, विश्वामित्र के यज्ञ-रक्षार्थ राम-लक्ष्मण का तपोवन को जाना, ताड़का-वध, सुबाहु-वध, धनुष का तोड़ना, विवाहोत्सव, इत्यादि बातों का वर्णन है।

अवध देश में सरयू नाम की एक नदी है। पहले उसके किनारे पर अयोध्या नाम की एक बहुत बड़ी और खूबसूरत नगरी थी। अयोध्या है तो वहाँ अब भी, परन्तु अब (कलियुग में) वह उतनी बड़ी नहीं है। जब की बात हम कह रहे हैं तब त्रेता-युग था। तब

गुरु-गृह गये पढ़न रघुराई ।
अलप काल विद्या सब आई ॥
विद्या-विनय-निपुणगुणशीला ।
खेलहिँ खेल सकल नृपलीला ॥
करतलबाण धनुष अतिसोहा ।
देखत रूप चराचर मोहा ॥
बन्धु सखा सब लेहिँ बुलाई ।
बन मृगया नित खेलहिँ जाई ॥
अनुजसखा सँग भोजन करहीं ।
मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं ॥
वेद पुराण सुनहि मन लाई ।
आपुकहहिँ अनुजहिँ समुझाई ॥
प्रातकाल उठि कै सब भ्राता ।
मातु पिता गुरुनावहिँ माथा ॥
आयसु माँग करहिँ पुरकाजा ।
देखि चरित हर्षहिँ मन राजा ॥

अब आगे की कथा सुनिए । विश्वामित्र नाम के एक बड़े ज्ञानी मुनि वन में रहा करते थे । एक दिन महाराजा दशरथ अपनी सभा में बैठे हुए थे कि विश्वामि[illegible] वहाँ आ पहुँचे । महाराज ने उठकर उनकी बड़ी [illegible] की । झुक कर उनको प्रणाम किया । फिर उनके [illegible] धोकर, उनको एक अच्छे आसन पर बिठलाया । उ[illegible] अच्छी तरह खिला पिला कर दशरथ ने हाथ जोड़ कर पूछा— महाराज, आप अपने आने का कारण कहिए ?

विश्वामित्र ने कहा कि मैं वन में रहता हूँ। वहीं मैं भगवान् का भजन किया करता हूँ। पर, उसी जङ्गल में दो राक्षस भी रहते हैं। मैं जब यज्ञ करता हूँ तब वे दोनों आकर मेरा यज्ञ बिगाड़ देते हैं। एक राक्षस का नाम मारीच है, दूसरे का सुबाहु। दोनों बड़े बलवान् हैं। वे रावण के नौकर हैं। हम लोगों से डरते ही नहीं। राम हमारे साथ चले गे तो वे उन दोनों को मार डाले गे। आप कुँअर जी को हमारे साथ कर दीजिए। कोई डर की बात नहीं है।

मुनि की बाते सुनते ही दशरथ का कलेजा काँप उठा। उन्होंने सोचा था कि मुनि कुछ रुपया पैसा ही माँगेंगे। राम ही को माँग बैठे गे, यह बात राजा के ध्यान में ज़रा भी न थी। वे घबरा कर हाथ जोड़ कर कहने लगे—मुनिजी, मैं आप के पैरों को छूता हूँ। आप मेरे राम का छोड़ दीजिए। राम अभी लड़का है। वह भला बड़ बड़े राक्षसों से कैसे लड़ेगा? महाराज, क्षमा कीजिए। उन राक्षसों के मारने को मैं आपके साथ अपनी बहुतसी सेना भेजे देता हू, पर आप राम को न माँगिए।

माँगहु भूमि धेनु धन कोसा।
सर्वस देउँ आज सह रोसा।

राजा की घबराहट देखकर मुनि हँसने लगे। क्यों हँसे सो भला राजा क्या समझते। समझा सिर्फ़ राजा के गुरु वशिष्ठ जी ने। वे जानते थे कि राम कोई ऐसे वैसे

आदमियों की तरह लड़के नहीं हैं। वे रामचन्द्र जी के पुरुषार्थ को जानते थे। इससे वशिष्ठजी ने दशरथ को समझा कर कहा—महाराज, आप कुछ सोच न कीजिए। विश्वामित्रजी के साथ राम को जाने दीजिए। कोई डर की बात नहीं है।

राजा दशरथ बेचारे क्या करें। आखिर को उन्होंने राम को बुला कर उनको मुनि के साथ जाने की आज्ञा दे दी। राम चले तो लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिये। विश्वामित्र प्रसन्न हो, राम लक्ष्मण को साथ लेकर, वन में अपने आश्रम की ओर चल दिये। राह में जाते समय विश्वामित्र ने दोनों राजकुमारों को तीर चलाने की दो बहुत अच्छी विद्यायें सिखला दीं।

इसके बाद वे लोग एक बहुत घने जङ्गल के भीतर आये। उस जङ्गल में ताड़का नाम की एक राक्षसी रहती थी। उसके शरीर में बड़ा बल था। वह हाथियों तक को पकड़ कर पछाड़ देती थी। पहले वहाँ पर बहुत अच्छा गाँव था। बहुत लोग वहाँ रहते थे। मगर ताड़का सब आदमियों को पकड़ पकड़ कर खा गई। इसी से वहाँ पर इतना भारी जङ्गल हो गया था। उस जङ्गल में होकर आदमी नहीं जा सकते थे। क्योंकि उनके जाते ही ताड़का उनको पकड़ कर हड़प जाती थी।

विश्वामित्र ने राम से कहा कि इस राक्षसी को मारना चाहिए।

तब राम ने अपने धनुष का चिल्ला खींच कर खूब ज़ोर से टंकार दी। चिल्ले से टङ् करके एक बड़ी भारी आवाज़ निकली। उस टंकार को सुन कर जंगल के सब जानवर चौंक पड़े।

टंकार को सुन कर ताड़का भी पहले तो चौंक पड़ी। मगर जब पास ही आदमियों के देह की सुगन्ध पाई-तब वह झट निकल आई। राम-लक्ष्मण को देखते ही दोनों हाथ फैला कर, मुँह फाड़ कर, वह उनको खाने के लिए दौड़ी। तब राम ने ऐसे बाण मारे कि ताड़का के दोनो कान कट गये। लक्ष्मण के तीर से उसकी नाक कट गई। तब तो वह न मालुम कहाँ भाग कर छिप गई और छिप कर ही दोनो भाइयों पर बड़े बड़े पत्थर फेंक फेंक कर मारने लगी। पर वह कहाँ से मारती थी यह न देख पड़ा। तब तो जिधर से ताड़का की आवाज़ पाते, राम लक्ष्मण उधर ही तीर चलाते। यह तीर, वह तीर, तीरों पर तीर, मारे तीरों के दोनो भाइयों ने ताड़का का नाक में दम कर दिया। ताड़का ने कभी इतने तीर न खाये थे। इन तीरों की बौछार के सामने भला वह छिप कर कब तक रह सकती थी। तीरों से घायल होकर वह घबरा उठी। अब फिर सामने न आती तो क्या करती? उसका फिर सामने आना था कि राम के एक तीर ने उसका काम तमाम कर दिया। वह धड़ाम से धरती पर गिर कर मर गई।

दोनों राजकुमारों की बहादुरी देखकर विश्वामित्रजी

बहुत खुश हुए। उन्होंने दोनों भाइयों को और भी अच्छे अच्छे कई हथियार दिये। वे हथियार ऐसे थे कि फेंककर मारने से कोई उनको रोक नहीं सकता था और वे मार कर फिर लौट आते थे। ऐसे हथियार "अस्त्र" कहलाते थे।

तब, कुछ दिनों बाद, वे लोग विश्वामित्र मुनि के तपोवन में आ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर विश्वामित्र दूसरे मुनियों को साथ लेकर यज्ञ करने लगे और राम लक्ष्मण राक्षसों को मार भगाने के लिए जंगल में घूम घूम कर चौकसी करने लगे। जब मुनियों के यज्ञ का धुआँ देखा तब वे दोनों राक्षस फिर आ पहुँचे। पर अब, राम को उनके भगा देने में कुछ तकलीफ़ न हुई। सुबाहु तो तीर खा कर वहीं ढेर हो गया, और मारीच को राम ने एक ऐसा तीर मारा कि वह बहुत दूर जा गिरा।

यह देख कर मुनि लोग खूब खुश हुए और राम की बड़ाई करने लगे।

अब मुनि लोग बड़े चैन से निडर होकर रहने लगे। राम-लक्ष्मण भी कुछ दिनों तक उन्हींके पास रहे। एक दिन कई मुनियों ने आकर कहा, चलिए हम लोग मिथिला को चलें। वहाँ के राजा जनक एक यज्ञ करने वाले हैं। चले चल कर देखना चाहिए। राम-लक्ष्मण भी सब के साथ मिथिला को चले।

अब जरा मिथिला का भी हाल सुन लीजिए। मिथिला

के राजा जनक बड़े नामी थे। वे थे तो राजा, पर ज्ञानी भी पूरे थे। बड़े बड़े ऋषि मुनि भी उनसे ज्ञान सीखने आया करते थे। वे अपनी प्रजा की रक्षा बड़ी सावधानी से करते थे। उनके एक कन्या थी। उसका नाम उन्होंने सीता रक्खा था।

जब सीता बड़ी हुई तब उनका ब्याह करने को राजा ने स्वयंवर करने के लिए एक सभा रची। और, उसका समाचार देश विदेश के सब राजाओं के पास भिजवा दिया। राम-लक्ष्मण भी विश्वामित्र मुनि के साथ वहाँ आ पहुँचे।

जब राम-लक्ष्मण मिथिलापुरी में पहुँचे तब उनको देख देखकर सब लोग कहने लगे—भाई, ये दोनो लड़के कौन हैं? देखने में तो ये क्षत्रिय से मालूम पड़ते हैं, पर कपड़े मुनियों के बालकों की तरह पहने हुए हैं। और जब उनको मालूम हुआ कि दोनो अयोध्या के महाराज दशरथ के लड़के हैं, तब सबके सब बहुत खुश हुए। सब लोग अपने मन ही मन कहने लगे कि यह साँवले कुमार (श्रीरामचन्द्रजी) तो सीता के लायक हैं।

देखि राम छबि कोउ इक कहई।
योग्य जानकी यह वर अहई॥

राजा जनक के घर एक बहुत पुराना धनुष रक्खा था। वह बड़ा भारी था। कोई उसको पकड़ कर नहीं उठा सकता था। राजा जनक ने कहा, जो कोई इस

धनुष को उठा लेगा, और इसमें जेह चढ़ा देगा, मैं उसी के साथ सीता का ब्याह कर दूँगा।

मगर यह कब हो सकता था कि बिना धनुष के उठाये राजा जनक, श्रीरामचन्द्र के साथ सीता का विवाह कर देंगे। और यह भी हर एक को कैसे विश्वास हो सकता था कि राम सरीखे छोटे लड़के से महादेवजी का धनुष उठाया जा सकेगा।

> कोउ कह शङ्कर-चाप कठोरा।
> ये श्यामल मृदु-गात किशोरा॥

सब लोग इसी तरह श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दर सूरत देख देख कर मन ही मन पछताते थे कि ऐसे अच्छे लड़के के साथ सीता का ब्याह न हुआ! मगर वे यह तो जानते ही थे कि राम छोटे से हैं तो क्या हुआ, उनकी बराबरी दूसरे आदमियों से नहीं हो सकती।

इधर कितने ही आदमी मिल कर बहुत भारी ज़ोर लगा कर, धनुष को राज सभा में ले आये। यहाँ पर आये हुए बहादुर लोग अपना अपना ज़ोर लगाने लगे। मगर उस भारी धनुष को कोई न उठा सका। एक एक राजा आते और उसको थाम कर ज़ोर लगाते, पर वह पुराना धनुष टस से मस भी न होता। जब सब राजा बहादुर लजा लजा कर अपनी अपनी जगह पर जा बैठे तब जनक ने दुखी होकर कहा—मैंने जान लिया कि दुनिया में अब कोई वीर है ही नहीं? क्या करूँ। मैंने ये समझे बूझे ऐसा

प्रण ठान लिया। जो मैं पहले ऐसा जानता तो कभी ऐसा कड़ा प्रण न ठानता। खैर, सीता क्वारी ही रह जायगी। आप लोग सब अपने अपने घर जाइए।

रहा चढ़ाउब तोरब भाई।
तिल भर भूमि न सकेउ छुड़ाई ॥
अब जनि कोउ माखै भट-मानी।
वीर-विहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू।
लिखा न विधि वैदेहि विवाहू ॥
सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ।
कुँवरि कुमारि रहै का करऊँ ॥
जो जनत्यउँ बिनु भट महि भाई।
तौ प्रण करि करतेउँ न हँसाई ॥

राजा जनक की ये बातें सुनते ही लक्ष्मणजी के बदन में मानो आग सी लग गई। मारे गुस्से के उनका बदन थर थर काँपने लगा। लक्ष्मणजी ने उठकर कहा—जनकजी महाराज! आपको अभी यह खबर नहीं है कि यहाँ सूर्यवंशी राजकुमार बैठे हैं। भैया जी मुझे हुक्म दें तो तुम्हारे पुराने धनुष का मैं मूली की तरह तोड़ डालूँ।

लक्ष्मणजी को बड़ा भारी गुस्सा चढ़ आया था। वह इतने ज़ोर से बोले कि सभा के सब लोग सुनते ही सन्ना गये। तब श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी की पीठ पर हाथ फेर कर कहा, भाई खफ़ा न हो, आओ हमारे पास बैठ

आओ। लक्ष्मणजी ने कहा वाह! देखिए, जनकजी ने हम लोगों की कैसी बेइज्जती कर डाली। वे समझते हैं कि सूर्यवंशवाले भी बहादुर नहीं होते। उन्होंने दुनिया भर को, "वीर-विहीन" समझ लिया है।

लक्ष्मणजी को जनक की बातें सुनकर गुस्सा तो आया, पर वे अपने बड़े भाई की आज्ञा कभी नहीं टालते थे। गुस्से से थर थर काँपते हुए भाई के पास बैठ गये। तब विश्वामित्रजी ने अच्छा मौक़ा देख कर राम से कहा, बेटा! उठो, अब तुम धनुष को उठा कर जनकजी का दुख दूर करो।

जिस समय रामचन्द्रजी धनुष उठाने के लिए चले उस समय सीताजी, जो अपनी सहेलियों के बीच में एक ओर को हाथ में जयमाला लिये खड़ी थीं, इनकी मोहिनी मूरत को देख कर मन ही मन ईश्वर से कहने लगीं कि हे परमात्मा! आप इस भारी धनुष को हलका कर दीजिए, जिससे ये उठा सकें।

श्रीरामचन्द्रजी ने धीरे धीरे धनुष के पास जा कर उसे बड़ी आसानी से उठा लिया। वह धनुष उनको ज़रा भी भारी न जान पड़ा। उसे उठाकर उन्होंने झट झुकाया और उसमें चिल्ला भी चढ़ा दिया। फिर एक हाथ से धनुष को थाम कर दूसरे हाथ से उसके चिल्ले को खींचना था कि वह तड़क कर दो टुकड़े हो गया। उसके टूटने की ऐसी भारी आवाज़ हुई कि राम, लक्ष्मण और

बिश्वामित्र को छोड़, जनक समेत सब राजे बाजे, जितने वहाँ पर मौजूद थे, सबके सब, सहम गये। तब सबों ने कहा ओः हो! राम में कितनी ताकत है!

राजा जनक की खुशी का अब क्या कहना था! उन्होंने झट सीता को बुलवाया। सीताजी, सखियों के साथ, हाथ में फूलों की माला लेकर वहाँ आई और उन्होंने उसे राम के गले में पहना दिया।

बाजे बजने लगे। चारों ओर लोग श्रीरामचन्द्रजी की जयजयकार करने लगे। अब जनक की सभा में खुशी का ठिकाना न रहा।

पर यह खुशी बहुत देर तक न ठहर सकी। एकाएक चारों तरफ़ से सन्नाटा छा गया। न मालूम कहाँ से किसी के बड़े ज़ोर से गर्जने की आवाज़ आने लगी। उस आवाज़ को सुन कर सब लोग घबरा गये। किसी के मुँह से बात तक न निकली। सब लोग सोचने लगे कि यह क्या बला है?

देखते ही देखते परशुरामजी वहाँ आ पहुँचे। उनका शरीर क्या था, मानो आग से जलता हुआ एक पहाड़ था। हाथ में एक बड़ा भारी धनुष था और कंधे पर एक बहुत बड़ा फरसा उस फरसे से जिसको मारते, वह तुरन्त टुकड़े टुकड़े हो जाता। क्षत्रियों ने परशुराम के बाप को मारा था। इसी से वे क्षत्रियों को देखते ही फरसे से मार डालते थे। इसी तरह, एक दफे नहीं—

इक्कीस दफे—ढूँढ ढूँढ कर—उन्होंने अपने फरसे से क्षत्रियों का शिकार किया था।

जब और क्षत्रिय न मिले, तब कुछ दिनों से उनका गुस्सा कुछ बुझ सा गया था और वे चुपचाप एक बन में रहते थे। मगर आज श्रीरामचन्द्रजी की बहादुरी देख कर इनके गुस्से की आग फिर धधक उठी। वे आतेही राम से कहने लगे, क्यों रे छोकरे! तूने ही धनुष तोड़ा है? तूने अपने को बहुत बड़ा वीर समझा होगा। आज तेरी बहादुरी देखूँगा।

यह सुन श्रीरामचन्द्रजी ने तो कुछ जवाब न दिया, मगर लक्ष्मणजी से न रहा गया। वे परशुराम की बातों पर हँस पड़े। उनका हँसना था कि परशुराम के गुस्से की आग और भी ज़ोर से धधकने लगी। फरसा उठा कर बोले—रे छोकरे, तू क्यों हँसता है?

लक्ष्मणजी ने फिर हँस कर कहा—फरसाराम जी! अपने फरसे को इतना ऊँचा न उठाइए। आप ब्राह्मण हैं तो ठंढे होकर बोलिए। मैं आपके चरणों को छूता हूँ। और, जो फरसा कुल्हाड़ी दिखाओगे तो बस हम भी क्षत्रिय के बालक हैं। तुम सरीखे हमने बहुत से ख़त्म किये हैं।

अब क्या था, परशुराम तो मारे गुस्से के जल भुन गये। चाहते ही थे कि लक्ष्मण पर एक हाथ मारें कि झट हाथ जोड़ कर श्रीरामचन्द्रजी उनके सामने आ खड़े

हुए और बोले—महाराज, आपको जो कुछ कहना हो मुझसे कहिए। यह तो अभी नादान लड़का है।

परशुराम ने झुँझला कर कहा—हाँ, हाँ, यह सब तेरी ही करतूत है। बड़ा बहादुर बन बैठा है? जनक का धनुष तोड़ डाला है न! हूँ! अच्छा, मेरे इस धनुष पर चिल्ला चढ़ा सके तो मैं तेरे साथ लड़ाई करूँगा देख, मेरा धनुष जनकवाले धनुष से भी बड़ा है।

इतना सुनते ही लछमणजी ने परशुरामजी को एक और चुभती सी सुना डाली। उन्होंने कहा—बस, रहने दीजिए, महाराज! आपका धनुष धनुष सब देख लिया। जिसकी आप बड़ाई करते हैं वह तो पुराना धनुष था। जो हमारे भाई साहेब के हाथ लगाते ही झट फूस की तरह टूट कर गिर पड़ा। यह भी उसी तरह का है तो इसे भी क्या आप तुड़वाना चाहते हैं?

अब तो परशुराम के क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा। वह लछमणजी की जली कटी बातें सुनकर बलबला उठे। उन्होंने कहा—रे छोकरे! तू छोटे से मुँह से क्यों बड़ी बड़ी बातें बनाता है। मालूम होता है, तेरा काल तेरे सिर पर नाच रहा है। मैं तुझे बालक समझ कर नहीं मारता, नहीं तो अब तक तुझे कभी का यमपुर भेज देता।

लछमण क्या कोई कम थे? उन्होंने भी तड़क कर कहा कि जाओ महाराज, मैं भी तुमको ब्राह्मण जान कर छोड़ देता हूँ। और कोई होता तो अब तक उसका कभी का काम तमाम कर डालता।

था वह खूब ही प्रसन्न होता था। सारी अयोध्या में बाजे बजने लगे, घर घर आनन्द-मङ्गल होने लगा, सब लोग अपने अपने घर और दूकानों को सजाने लगे। जब राज महलों में यह समाचार पहुँचा तब सब रानियाँ बड़ी खुश हुईं। परन्तु कैकयी की दासी मन्थरा ने जब राम के राजा होने का समाचार सुना तब उसको बड़ा दुःख हुआ। यह बड़ी देख-जलनी थी। यह खबर सुनतेही उसका मुँह फीका पड़ गया और झटपट दौड़ती हुई कैकयी के पास गई और आकर कहने लगी कि देख, तुझे कुछ खबर भी है। तू तो अपने रूप के घमण्ड में बैठी है, पर अब तुझ पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। अब तेरा सब आदर चल बसा। अब तेरे हिस्से में दरिद्रता आ गई। राजा तेरे सौतेले बेटे रामचन्द्र को राजा बनाते हैं। देख, तुझसे सलाह तक भी नहीं ली। इसीलिए भरत को पहले ही से उसके मामा के यहाँ पहुँचा दिया। अब मालूम पड़ा कि राजा तुमसे बनावटी प्यार करते हैं। जो तू अपना और अपने बेटे का भला चाहती है तो जल्दी कर। अब एक ही रात बाकी है। कल तो राजतिलक हो ही जायगा। राजतिलक हो जाने पर फिर सिवा पछताने के और कुछ हाथ न लगेगा। देख, राजा प तेरे दो वरदान जमा हैं, उनको अब माँग ले। पहले वर से राम को १४ वर्ष का बनवास और दूसरे से भरत को राजगद्दी।

मन्थरा की ऐसी प्यार की बातें सुन कर कैकयी ने मन्थरा की खूब बड़ाई की और तुरन्त गहने कपड़े फेंक,

मैला वेष बना कर, गुस्से में भर कर पड़ रही। जब रात को राजा दशरथ महलों में आये तब रानी केकयी को अपनी जगह न पाया, देखें तो अलग एक कोने में मैले कपड़े पहने हुए धरती पर लोट रही है। राजा ने उसके पास आकर उसको झाड़ पोंछ कर सावधान करा कर उससे पूछा कि क्या बात है ? आज तो बड़ी खुशी का दिन है। आज तुम यहाँ मन मैला किये क्यों पड़ी हो ? कहो ? तो, जो तुम कहोगी वही होगा। राजा के बहुत देर तक समझाने बुझाने पर रानी केकयी ने कहा कि आप सत्य वादी हैं, कभी झूठ नहीं बोलते और आप हमको दो वर भी दे चुके हैं। पिछली बात विचारिए, उन्हें याद कीजिए और वे बातें आज पूरी कीजिए। हम कोई नया वर तो माँगती ही नहीं। जो आप हमारे वर पूरे न करेंगे तो हम यहीं मर जायँगी। सुनिए, पहले वर से भरत को राज गद्दी और दूसरे से राम को १४ वर्ष का बनवास। और राम तुरन्त बन को चले जायँ।

राजा यह सुनते ही थरथराने लगे। उनके होठ फड़ फड़ाने लगे। शोक से आँखों के सामने अँधेरा हो आया। मूर्च्छा खा कर अचेत हो गिर पड़े। बहुत देर पीछे जब मूर्च्छा जागी तब केकयी को समझाने लगे। यहाँ तक कि सारी रात समझाने ही में बीत गई, पर रानी टस से मस नहीं हुई। अन्त में जब रानी समझाने से नहीं समझी तब धर्म की फाँसी से जकड़े हुए राजा ने उसके वर पूरे किये और जी कड़ा करके कह दिया कि तू नहीं मानती है तो

जो तेरी इच्छा में आवे सो ही कर। बात यह थी कि राजा सत्यवादी थे। उन्होंने अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणप्यारे पुत्र को वन भेजना मंजूर किया। राजा इतना कहते ही फिर बेहोश होकर धरती पर धड़ाम से गिर पड़े। इतने में रात बीत गई, दिन निकल आया।

आज सारी नगरी में चारों ओर खुशी ही खुशी मनाई जा रही है। राम भी प्रात उठकर स्नान, सन्ध्या कर्म करके रेशमी वस्त्र पहन कर राजतिलक के लिए तैयार हैं, उधर जनकनन्दिनी भी मगन हो रही हैं कि आज हम महारानी कहलाकर, देश में कीर्ति पावेंगी। माता कौशल्या भी फूली नहीं समाती और परमात्मा को धन्य वाद दे रही हैं कि आज हमारा पुत्र आपकी कृपा से राज गद्दी पावेगा। लछमन अलग ही फूले अंग नहीं समाते। मन में मगन हैं कि बड़े भाई की सेवा कर सुख से दिन बितावेंगे। पर यह कोई नहीं जानता कि इन आशाओं के बदले रोना पड़ेगा। दिन निकलते ही सुख के बदले दुख का सामना होगा। राजगद्दी की जगह धरती पर सोना होगा। रेशमी वस्त्रों के बदले पेड़ों की छाल पहनने को मिलेगी। इस समय मगन हैं, सवेरे ही रोते होंगे। सवारियों के बदले ऊँची नीची धरती पर पाँव पाँव चलना होगा। पाठको! सच है, यहाँ की खुशी पर फूलना न चाहिए। अब थोड़ी दर में देखना, इनकी क्या दशा होगी।

दिन चढ़ा देख कर, सुमन्त दीवान, राजा को बुलाने

के लिए राज-महलों में आया। यहाँ राजा को अचेत पड़े देख कर आश्चर्य्य में डूब गया। रानी केकयी ने सुमन्त से कहा कि ऐ सुमन्त! आज रामचन्द्र के राजतिलक के आनन्द में राजा रात भर जागते रहे हैं। इस कारण अब ऊँघ रहे हैं। तुम रामचन्द्र को यहाँ जल्द बुला लाओ। इतना सुन सुमन्त तुरन्त ही श्रीरामचन्द्रजी को बुला लाया। श्रीरामचन्द्रजी ने राजा को दुःखित और बेहोश पड़े देख कर रानी केकयी से पूछा कि माता हमने तो अपनी जान में कोई अपराध नहीं किया और जो भूल चूक भी कोई हो गई हो तो आप उसे क्षमा कीजिए। क्या कारण है कि पिताजी आज बोलते भी नहीं। हम से पिताजी का दुःख नहीं देखा जाता। यह सुन कर केकयी ने कहा कि ऐ राम! राजा को कुछ दुःख नहीं। न राजा किसी पर क्रुद्ध हैं। राजा के मन में एक बात आई है, पर तुम्हारे डर से कुछ कह नहीं सकते। क्योंकि तुम उनको बहुत प्यारे हो। राजा ने हमको वचन दिये थे, पर तुम्हारे डर से पूरे नहीं करते। ऐ राम! धर्मात्मा मनुष्य को अपना वचन अवश्य पूरा करना चाहिए। जो तुम राजा का वचन पूरा कर दो तो मैं तुमको उनकी आज्ञा कह सुनाऊँ।

इतनी बात सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी कुछ लज्जित हो कर बोले कि ए माता! ऐसे संकोच से आप क्यों कहती हैं? हम राजा की आज्ञा से आग में कूदने को तैयार हैं। हम तो हलाहल विष भी पी सकते हैं और समुद्र में

भी।डूबने को तैयार हैं। चाहे जो हो, राजा जी हमसे बेधड़क होकर आज्ञा करें। हम ज़रूर आज्ञा को मानेंगे।

कैकयी ने कहा कि हमने राजा से दो वर माँगे हैं। एक से भरत को राजगद्दी और दूसरे से तुमको १४ वर्ष का बनवास। तुम्हारे प्रेम से राजा साफ़ साफ नहीं कहा चाहते और न तुमको देख सकते हैं। ऐ राम! अब तुमको चाहिए कि तुम राजा की आज्ञा का पालन करो।

इतना सुनते ही श्रीरामचन्द्र ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि बहुत अच्छा, भरत राजा हों, हम अभी चीर बल्कल पहन कर बन को जाते हैं। पर हमें एक संदेह है, कि जब पिताजी हमारे सभाव को जानते थे, हमारी आदतों को पहचानते थे, तब हमसे तुरन्त क्यों नहीं कह दिया। तुमने इतना बखेड़ा क्यों किया? ऐ माता! हम अवश्य पिताजी की आज्ञा का पालन करेंगे। यह हम खूब जानते हैं कि माता पिता की आज्ञा के पालन से बढ़ कर पुत्र का दूसरा धर्म कोई नहीं है। अब आप पिताजी को समझा दें कि कुछ सोच न करें और भरत के बुलाने को दूत भेज दें। हम अभी बन को जाते हैं।

धन्य है ऐसे वीर धमात्मा को कि जिसको राजगद्दी की खबर सुन कर कुछ खुशी न हुई और बनवास की आज्ञा पाकर कुछ भी दुःख न हुआ।

अब श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता से आज्ञा माँगने के लिए अपने महल में आये और कहने लगे कि माता! अब हम रेशमी आसन पर न बैठेंगे। अब तो हमको कुशासन

ही रेशमी आसन से बढ़ कर होगा। पिताजी ने राज तो भरत को दिया है और हमारे लिए १४ वर्ष वन में बसने की आज्ञा दी है। ऐ माता! अब तो हम यहाँ भोजन भी न करेंगे। अब तो वन में कन्द, मूल, फल, खाकर चौदह वर्ष बितावेंगे।

कौशल्या को अपने प्यारे पुत्र को राज के बदले वन जाते सुन, कितना दुख हुआ होगा। उसको हम कहाँ तक लिखें। परन्तु जब यह समाचार लक्ष्मण के कानों में पहुँचा तब उन्हें राजा के ऐसे विचार पर बड़ा क्रोध आया और कौशल्या से आकर कहने लगे कि माता! कैकयी के कहने से श्रीरामचन्द्रजी का वन जाना हमें उचित नहीं मालूम होता; जो कहो कि यह तो राजा की आज्ञा है, तो ऐसे राजा का भी क्या ठिकाना, उनकी तो बुढ़ापे में बुद्धि मारी गई है। जो उनको विचार होता तो क्या वे स्त्री के वश में हो कर, निर्दोषी श्रीरामचन्द्र को, वनवास की आज्ञा देते! जो कहो कि श्रीरामचन्द्रजी में कोई दोष होगा, तो यह कभी हो ही नहीं सकता। सामने तो क्या, पीछे भी कोई वैरी से वैरी भी श्रीरामचन्द्रजी में कुछ दोष नहीं लगा सकता भला कोई धर्मात्मा पिता, ऐसे देवसमान सीधे-स्वभाव विद्वान् और सब के प्यारे बेटे को वन को निकाल सकता है? इससे मालूम होता है कि राजा की बुद्धि ठिकाने नहीं रही।

ऐ भ्राता रामचन्द्र! जब तक किसी को मालूम न हो आप हमारे साथ राज को अपने वश में कर लीजिए और

जो यह सन्देह हो कि अब राज कैसे मिलेगा ? तो इसके लिए हम तो आपकी रक्षा में धनुष लिये मौजूद ही हैं। फिर आपको रोकनेवाला कौन जन्मा है ? एक दो आदमी की तो गिनती ही क्या, जो सारी अयोध्या भी झगड़ा करेगी तो हम आज सबको मार डालेंगे। भरत के मामा नाना भी जो बैर करेंगे तो मैं आज उनको भी जीता न छोड़ूँगा। आप शान्ति छोड़िए, राज-काज में शान्ति का क्या काम। यह शान्ति तो तपसी ब्राह्मणों के लिए है। आप तो क्षत्रिय हैं। राजा ने किस बल-वीर्य पर राज कैकयी को देना चाहा है ? पहले तो आप पटरानी के पुत्र, दूसरे सब में बड़े, राज तो धर्म से आपका ही है। फिर दूसरे की चीज़ को देने वाले पिता कौन हैं ? अब किसी को सामर्थ्य नहीं कि वह हमारे सामने आपका राज भरत को द दे। ऐ माता ! हम सच कहते हैं कि हमें भाई श्रीरामचन्द्रजी प्राण से भी प्यारे हैं। हम तुमसे सौगन्ध खाकर कहते हैं कि जो श्रीरामचन्द्रजी बन में जायँगे तो हम भी उनके साथ ही जायँगे, फिर हमारा यहाँ क्या काम। देखो हम अभी तुम्हारा सब दुख दूर करेंगे और राजतिलक श्रीराम चन्द्रजी को ही दिलाकर राजा को अपनी करनी का फल चखायेंगे।

लक्ष्मण के ऐसे क्रोधक भरे और वीर-रस में पगे हुए वचन सुन कर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि भाई ! तुम्हारा विचार ठीक नहीं। यह तो हम खूब जानते हैं कि तुम्हारा हममें बहुत प्रेम है और तुममें बल-पौरुष

भी बहुत है। जो तुम कहते हो, सो कर भी सकते हो। पर तुम धर्म अधर्म को जानते हुए भी जो कहते हो सो ठीक नहीं। धर्म को जिसमें पिता की आज्ञा का पालन भी है, कभी नहीं छोड़ना चाहिए। हममें ऐसा सामर्थ्य नहीं कि पिता के वचनों को भङ्ग करें। तुम ऐसा विचार मत करो। और फिर माता से कहने लगे कि माता! अब आप हमें वन जाने की आज्ञा दीजिए।

माता कौशल्या तो चुप रहीं, पर लक्ष्मण को फिर क्रोध आ गया और बोले—भाई! आपने जो पिता की इस आज्ञा का भङ्ग करना अधर्म समझा सो ठीक नहीं है। क्या आपने अभी तक नहीं जाना कि अपने मतलब के लिए आपको बिना अपराध वनवास दिया जाता है। क्या यह कोई धर्म की बात है? हम ऐसी अन्याय की बात नहीं मानते। क्षमा कीजिए, आप पिता के वचनों से राज्य करने को उद्यत थे और अब वन जाने को तैयार हैं और इसी को धर्म मानते हैं, ऐसे धर्म को हम तो दूर से ही प्रणाम करते हैं। यह तो धोखा है, धर्म नहीं। आप इसे भी धर्म ही कहते हैं? आपके सिवा और कोई इस बात को धर्म नहीं कह सकता। और जो आप यह कहें कि ये दैव (प्रारब्ध) के वचन हैं, टल ही नहीं सकते, तो हम को ऐसे दैव पर भी भरोसा नहीं है। क्योंकि कायर पुरुष ही भाग्य पर भरोसा करते हैं। शूर-वीर नहीं करते। जो शूर वीर अपने पुरुषार्थ से दैव के बल को दबाता रहता है, भाग्य उसका कुछ भी नहीं कर

सकता । और जो आप यह कहें कि "विधि का लिखा को मेटनहारा" तो हम आप को आज दैव और पौरुष का बल दिखलावेंगे । तब आपको मालूम होगा कि भाग्य बलवान् है या पुरुषार्थ । जैसे मस्त हाथी अंकुश के लगने से झुक जाता है वैसे ही आज हम अपने बल पुरुषार्थ से दैव को झुका देंगे । हम दशरथ और केकयी की सब आशा मेट देंगे । भाई ! बुढ़ापे में तो राजा बन को आया करते हैं, न कि जवानी में । अभी तो आपको बहुत दिन राज करना है । बुढ़ापे में जब आप बन को जायँगे तब आप के पीछे आपका पुत्र राजा होगा, न कि भरत या भरत का पुत्र । आप बेखटके राज कीजिए । हम आपकी रक्षा करेंगे । जो हम ऐसा न करें तो आप हमको वीर न समझें । देखो, हमारी ये बाहें गहना नहीं हैं, लड़ने को हैं । यह धनुष केवल शृंगार ही नहीं है दुश्मनों को झिझकारने को है । ये तीर रखने को नहीं हैं वैरियों का कलेजा छेदने को हैं । यह तलवार बाँधने की ही शोभा के लिए नहीं है, शत्रुओं का सिर काटने को है । भला कोई हमारा शत्रु बनकर जीता रह सकता है ? कोई नहीं । जब वैरियों की सेना, लड़ाई में, हमारी तलवार से कट कट कर गिरेगी तब युद्धभूमि में लोहू की नदी बह निकलेगी । आज हमारे खड्ग से वैरियों के सिर लोहू टपकते हुए धरती पर गिरते दीखेंगे । आप यह न समझें कि हम कहते ही रह हैं, कर नहीं सकते नहीं नहीं, हम अकेले ही सब वैरियों की सेना को मार सकते हैं, अधिक कहने से कुछ नहीं । आप को आज

हमारे पुरुषार्थ की परीक्षा केकयी की आशा मिटाने और आपको राजा बनाने में अच्छी तरह मालूम हो जायगी।

लक्ष्मण जी के ऐसे वचन सुन कर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा–भाई! तुम धर्म अधर्म को जान बूझ कर भी जो बात कहते हो सो ठीक नहीं है। धर्मशास्त्र की यह आज्ञा क्या तुम भूल गये कि "माता पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का सबसे बड़ा धर्म है।"

जब लक्ष्मणजी को यह पूरा भरोसा हो गया कि श्रीरामचन्द्रजी ज़रूर वन को जायँगे, लाख उपाय करने पर भी किसी तरह रुक नहीं सकेंगे, तब फिर हाथ जोड़ कर बोले—

मो कहँ कहा कहब रघुनाथा।
रखिहैं भवन कि लैहैं साथा॥
* * *
बोले बचन राम नय-नागर।
शील सनेह-सरल सुखसागर॥

दोहा—

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिरधरि करहि सुभाय।
लहे लाभ तिन जन्म के, न तरु जन्म जग जाय॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई।
करौ मातु पितु-पद सेवकाई॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं।
राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं॥

मैं बन जाउँ तुमहिँ लै साथा।
होइहि सब विधि अवध अनाथा॥
रहहु करहु सब कर परितोषू।
न तरु तात होइहि बड़ दोषू॥
रहहु-तात अस नीति विचारी।
सुनत लषन भये व्याकुल भारी॥

दोहा—

उतर न आवत प्रेम बस, गहे चरण अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तो कहा बसाइ॥

गुरु पितु मातु न जानौं काहू।
कहौं सुभाय नाथ पतियाहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई।
प्रीति प्रतीति निगम निज गाई॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी।
दीनबन्धु उर अन्तरयामी॥
मन क्रम वचन चरण रत होई।
कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई॥

अब श्रीरामचन्द्रजी ने देखा कि लक्ष्मण की हमा
पूरी भक्ति है, ये हमारा वियोग नहीं सह सकेंगे औ
समझाने से नहीं समझेंगे, तब उनसे कह दिया कि—

माँगहु विदा मातु सन जाई।
आवहु वेगि चलहु बन भाई॥

इतनी सुनते ही मगन होकर लक्ष्मणजी अपनी मात

से आज्ञा माँगने के लिए चल दिये। श्रीरामचन्द्रजी भी अपनी माता को समझा बुझा कर उनसे आज्ञा और आशीर्वाद लेकर अपने महल को अस्त्र शस्त्र लेने के लिए चले गये।

जब यह समाचार सीताजी ने सुना और अपने स्वामी को आते देखा तब विकल हो उठ कर कहने लगीं कि प्राणनाथ! जब आप ही अयोध्या को छोड़ वन को जाते हैं तब मैं यहाँ रह कर क्या करूँगी? मुझे भी अपने साथ ही लेते चलिए। मैं सब प्रकार से वन में आपकी सेवा करूँगी। मैं आपके वियोग में एक पल भी नहीं जी सकती। जिस तरह चन्द्रमा से चाँदनी अलग नहीं हो सकती, जिस तरह देह से छाया दूर नहीं हो सकती; उसी तरह मैं भी आपसे अलग नहीं रह सकूँगी। जो आप यह कहें कि वन में बड़े कष्ट उठाने पड़ेंगे तो मुझे वे सब मंज़ूर हैं। आप के चरणों का दर्शन करती हुई मुझ को वन में कुछ भी दुख न होगा, सुख ही मिलेगा। मैं तो आपके संग ही चलूँगी।

इस प्रकार सीताजी ने श्रीरामचन्द्रजी के साथ वन जाने के लिए बहुत प्रार्थना की और श्रीरामचन्द्रजी ने भी उन्हें बहुत समझाया, परन्तु वह पतिव्रता स्त्री भला कब अपने पति के वियोग में जीना पसन्द कर सकती थी! कभी नहीं। अन्त में विवश हो श्रीरामचन्द्रजी ने अपने साथ चलने की उनको भी आज्ञा दे दी।

अब रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण वन जाने को तैयार

होकर पिता जी को प्रणाम करने के लिए चले । सारी अयोध्या में रामचन्द्रजी के वनवास की चर्चा फैल गई । हर एक नगर निवासी शोकभरी दृष्टि से राजकुमारों और राजकुमारी को देखता था । रास्ते में इतनी भीड़ हो गई थी कि किसी को निकलने की भी जगह नहीं मिलती थी । इतने में रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण सहित उस कोप भवन में पहुँचे जहाँ महाराज दशरथ शोक में बेहोश पड़े थे । जब राजा को कुछ होश हुआ और रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण को मुनियों का वेष धारण किये हुए आते देखा तब प्रेम के मारे उनकी ओर दोनों हाथ फैला कर चले, पर शोक ने उन्हें दबा लिया । बेहोश हो धरती पर धड़ाम से गिर पड़े । जब दोनों भाइयों ने राजा की यह दशा देखी तब धीरज धर मूर्छित पिता के पास पहुँचे और सब रानियाँ (कैकेयी को छोड़) हा राम ! हा राम !! कह कह रोने लगीं और बेहोश हो हो कर गिर पड़ीं । उस समय कोई भी सावधान न था जो राजा को उठाता । लाचार इन्हीं तीनों ने मिल राजा को पलँग पर डाला । अब तीनों सोच में हैं कि कोई औषध नहीं जिसे सुँघा कर होश में लायें । पानी भी नहीं जो मुँह पर छिड़कें । पखा नहीं जिससे हवा करें । अब तीनों यह देख हैरान हैं कि क्या करें । लाचार इन्हीं तीनों ने अपने कपड़ों से हवा की और कुछ देर में राजा को होश हुआ ।

अब श्रीरामचन्द्रजी अपने पिता को प्रणाम करके बोले कि पिताजी आप सबके स्वामी हैं । आपकी आज्ञा

से हम वन जाने को तैयार हैं। हमारे साथ सीता और लक्ष्मण भी वन को जाते हैं। हमने इनको बहुत समझाया, पर ये मानते ही नहीं। लाचार हम इनको भी अपने साथ ही लिये जाते हैं। हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि इनको भी हमारे साथ वन जाने की आज्ञा दीजिए।

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी अपने पिता और अपनी माताओं से आज्ञा और आशीर्वाद लेकर चलने को तैयार हुए। इतने ही में सुमन्त सारथी रथ लाकर बोला कि राजाजी की आज्ञा से यह रथ तैयार खड़ा है। आप इसमें सवार हूजिए। जहाँ आप आज्ञा करें मैं वहीं ले चलूँगा।

अब पहले जानकीजी रथ पर चढ़ीं और पीछे राम, लक्ष्मण भी अपने अपने अस्त्र शस्त्र लेकर सवार हो गये। तब सुमन्त सारथी ने घोड़े दौड़ाये। उस समय सारी अयोध्या में कोलाहल मच रहा था। जिधर देखिए उधरही राम के वनवास की चर्चा हो रही थी और सब शोक में डूब रहे थे। कोई कैकेयी के काम की बुराई करता था, कोई दशरथ की। और श्रीरामचन्द्रजी की सब लोग बड़ाई करते हुए कह रहे थे कि भाई! ऐसे धर्मात्मा बेटे हमने किसी के नहीं देखे। देखो १४ वर्ष के वनवास को खुशी से जा रहे हैं। तनिक भी मन में उदास नहीं होते। धन्य है इनको।

अब सारे नगर-निवासी लोग क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, क्या बूढ़े, सभी, श्रीरामचन्द्र के वियोग से

दुःखी होते हुए और धाड़ें मार मार कर रोते हुए हा राम हा राम ! कहते रथ के पीछे पीछे दौड़े हुए चले आ रहे हैं। जब रथ बहुत दूर निकल गया और उड़ती हुई धूल भी दीखनी बन्द हो गई, तब लाचार होकर सब अयोध्या को लौट आये।

अब श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी का रथ चलता चलता तमसा नदी के पार पहुँच गया और आगे फिर अच्छा रास्ता पाकर जल्द बहुत दूर निकल गया। चलते चलते गङ्गा के तीर पहुँच कर रात्रि को वहाँ एक वृक्ष की छाया में विश्राम किया। श्रीरामचन्द्रजी रथ से उतरे ही थे कि इतने में वहाँ का राजा, जो दशरथजी के अधीन था और जो जाति का गुह (भील) था, इनकी महमानी करने के लिए आया। उसने इनको अपनी नगरी में चलने के लिए बहुत कुछ कहा, परन्तु ये तो अब वनवास स्वीकार करचुके थे, इनको नगर में जाने और अच्छे पलँगों पर सोने और भाँति भाँति के भोजनों से क्या काम। श्रीरामचन्द्रजी ने राजा गुह से कह दिया कि हम आपका प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु अब तो हमें पिता की आज्ञा का पालन करना है। इसलिए हम यहीं जंगल में, इस वृक्ष के नीचे रात बितायगे और यहाँ जो कुछ फल मूल मिलेंगे, उनसे निर्वाह करेंगे।

मुँह धोया और फिर सीताजी ने। अब श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी दोनों सो गये और लक्ष्मण थोड़ी दूर पर जाकर बाण चढ़ाये, वीरासन लगाये, रात्रि भर जागते रहे। राजा गुह भी लक्ष्मणजी के पास बैठ गये। और लक्ष्मणजी से कहने लगे कि राजकुमार! श्रीरामचन्द्रजी तो सो गये, अब आपके और सुमन्त के लिए पलँग, तैयार हैं। आप आराम करें, कष्ट भोगने को हम तैयार हैं। इस पर लक्ष्मणजी ने कहा कि राजन्! तुमको ऐसा ही कहना चाहिए। पर विचारिए तो सही कि भला जब हमारे बड़े भाई, जो हमारे पिता के समान हैं, वे तो जमीन पर सोवे और हम पलँग पर सोवें? भला ऐसा अधर्म कभी हम कर सकते हैं? कभी नहीं। आपने इन घोड़ों के लिए दाने घास का बन्दोबस्त कर दिया है, बस यही आपका सब कुछ है।

प्रातःकाल होने पर रामचन्द्रजी ने सुमन्त को आज्ञा दी कि तुम रथ अयोध्या को लौटा ले जाओ। पिताजी ने यहीं तक आने के लिए तुमको आज्ञा दी थी। अब हम यहाँ से पैदलही जायँगे। तुम्हारे अयोध्या पहुँचने पर माता कैकयी को भी पूरा निश्चय हो जायगा कि अब राम ठीक ठीक बन को गये। यह सुनकर सुमन्त की आँखों में आँसू भर आये और गद्गदवाणी हो गई। सुमन्त ने श्रीरामचन्द्रजी से उनके साथ बन जाने को बहुत ही प्रार्थना की, परन्तु लाचार रामचन्द्रजी के समझाने पर उसे अयोध्या को लौटना ही पड़ा।

अब सुमन्त्र तो रथ में घोड़े जोत कर अयोध्या की ओर चल दिया और श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मण के साथ नाव में बैठ कर गंगाजी के पार हो गये। नाव से उतर कर आगे आगे लक्ष्मणजी तीर कमान लिये चल दिये, बीच में सीताजी और उनके पीछे श्रीरामचन्द्रजी चले। जो राजकुमार कभी बिना सवारी कहीं नहीं जाते थे, आज वे बिना देखे हुए रास्ते से पैदल जा रहे हैं। जो राजकुमारी बड़े ऊँचे ऊँचे गद्दों पर आराम करती थी, आज वह इस प्रकार वन में पैदल जा रही है। ईश्वर की माया जानी नहीं जाती। पल में कुछ का कुछ हो जाता है। जिस समय राम, लक्ष्मण और सीताजी तीनों मुनियों के वेष से वन को पैदल जा रहे थे, उस समय उनकी जो शोभा थी वह लिखी नहीं जा सकती।

इस तरह चलते चलते सायङ्काल हो गया और ठहर कर सबने सन्ध्या की और बात चीत करने लगे। जब सवेरा हुआ, तब वहाँ से आगे को चल दिये। रास्ते में तरह तरह के जङ्गल देखते हुए दक्षिण की दिशा को चलते चलते थोड़ा ही दिन बाक़ी रह गया। सामने प्रयाग-तीर्थराज का दर्शन होने लगा। गंगा यमुना के मिलने का शब्द सुनाई देने लगा। इस प्रकार आते आते सायङ्काल के समय भरद्वाज मुनि के आश्रम पर प्रयाग में पहुँचे। आगे चल कर देखा तो मुनिराज अपने शिष्यों समेत अग्नि में आहुति डाल रहे हैं। राम, लक्ष्मण और सीताजी ने आगे बढ़ कर भरद्वाज मुनि को प्रणाम किया

और उन्होंने वन में आने के सब कारण उनसे कह दिये। भरद्वाज मुनि ने उनको आशीर्वाद देकर उनका कुशल-समाचार पूछा और तीनों को आसन दिया, हाथ पैर धुलवाये और भाँति भाँति के कन्द मूल फल खाने को दिये।

श्रीरामचन्द्रजी ने भरद्वाजजी से कहा कि महाराज! हमें अब इस वन में १४ वर्ष व्यतीत करने हैं। आप हम को एकान्त में कोई ऐसा स्थान बतावें कि जो यहाँ से दूर हो और जहाँ तरह तरह के फल-पुष्प वाले वृक्ष भी अनेक हों। क्योंकि यदि हम यहाँ रहे तो यहाँ से अयोध्या समीप ही है, हमारी यहाँ ज़रूर खबर पहुँच जायगी और फिर अयोध्यावासी यहाँ आ आ कर बड़ी भीड़ लगावेंगे। इसमें हमको भी शोक होगा और आपके भी भजन में विघ्न पड़ेगा। इससे हमें कोई और स्थान बतलाइए।

इस तरह पूछने पर भरद्वाजजी ने इनके रहने के लिए चित्रकूट पर्वत का पता बता दिया, जोप्र याग से लग भग ३४ कोस की दूरी पर है। इस पर्वत पर बड़े बड़े ऋषि महात्मा तप किया करते थे और यहाँ किसी प्रकार का दुःख नहीं था। यह पर्वत ऐसा मनोहर था कि इसकी शोभा को देखते हुए सबका मन मोहित हो जाता था!

अब श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताजी सहित भरद्वाज मुनि को प्रणाम कर, उनके बताये हुए रास्ते से, चित्रकूट पर्वत की ओर चल दिये। और मुनि भी उनको आशीर्वाद देकर आश्रम में बैठ गये। अब दोनों

जानकीजी को आगे किये हुए यमुना के तीर पर पहुँचे। देखा कि यमुना बड़ी गहराई और वेग से बह रही है। पार जाना चाहते हैं पर कोई नाव नहीं। फिर इन्होंने भरद्वाज की शिक्षा के अनुसार सूखे हुए बाँस इकट्ठे किये और बरनाड़ बनाई और उसमें वृक्षों को सूखी लकड़ी लगा कर हरी हरी घास कूट कूट कर छिद्रों में भर दी और लक्ष्मणजी ने नरम नरम टहनियों से जानकीजी के लिए बैठक बनादी। जानकीजी को उस पर बैठा कर उनके पास अपने अस्त्र शस्त्र रख दिये। पीछे से दोनों भाई भी चढ़े और नाव चलाई। जब नाव मझधार में पहुँची तब सीताजी ने परमात्मा को याद किया और बोलीं कि हे देव! जो हम तीनों आदमी राज़ी खुशी १४ वर्ष बन में बिता कर अयोध्या पहुँच जायँगे और हमारा पतिव्रत धर्म पूर्ण बना रहेगा तो हम बहुत सी गायें दान करेंगी। पर यह तब होगा जब श्रीरामचन्द्रजी को राज गद्दी मिल जायगी।

बस, ऐसा कहते कहते ही दक्षिण का तीर आया और तीनों उतर, नाव वहीं छोड़, बन को चल दिये। अब रास्ते में जिस जिस फूल या फल को सीताजी कहतीं जाती थीं उसी उसी को लक्ष्मण ला ला देते थे। इतने ही में चलते चलते वाल्मीकिजी का आश्रम आ गया और तीनों ने मुनिजी को प्रणाम किया। वाल्मीकिजी ने भी इनकी बड़ी पूजा की। वाल्मीकिजी ने भी श्रीरामचन्द्रजी के ठहरने के लिए चित्रकूट ही उत्तम बताया।

अब श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मण और सीता सहित चित्रकूट पर पहुँचे और बड़ा मनोहर स्थान जान, लक्ष्मणजी से कह दिया कि भाई! यहाँ सब प्रकार का सुख मिलेगा। यहाँ सब प्रकार के फल-फूल वाले वृक्ष भी हैं। बस, कोई कुटी बन जाय तो यहीं रहने लगें।

इतना सुनते ही लक्ष्मणजी ने बहुत सुन्दर कुटी तैयार करली और उसमें एक ओर वेदी बनाई और तीनों के लायक सोने के लिए अलग चबूतरे बना दिये। अब श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजी सहित वहाँ सुख पूर्वक रहने लगे।

उधर श्रीरामचन्द्रजी से विदा होकर सुमन्त को चलते चलते अयोध्या दीखने लगी। सुमन्त को अयोध्या पहुँचते समय कुछ दिन बाकी था परन्तु यह सोच कर कि जो मैं अभी अयोध्या में जाऊँगा तो लोग मुझे रास्ते में रोक कर श्रीरामचन्द्रजी का समाचार पूछेंगे तो मैं उनसे किस मुँह से यह कहूँगा कि वे वन को चले गये और मैं लौट आया। इस लज्जा से, सुमन्त सन्ध्या समय जब कुछ अँधेरा हो गया तब, अयोध्या में गया। उधर राजा और रानियाँ रथ की आवाज़ सुन कर दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। जब राजा ने रथ को खाली देखा तब हा राम! हा राम! कह कर मूर्च्छा खाकर धरती पर गिर पड़े। तब सुमन्त ने उन्हें उठाया और पूछ पाछ कर भीतर महल में ले गये। जब राजा की मूर्च्छा जागी तब सुमन्त से पूछने लगे कि पितृभक्त धर्मात्मा राम कहाँ है? मेरी ला।

पतोहू जनकनन्दिनी कहाँ है ? और श्रीरामचन्द्र का प्यारा भाई लक्ष्मण कहाँ है ? बस उस समय सुमन्त्र का भी जी शोक से घबरा गया था और आँखों से आँसू बह रहे थे। जैसे तैसे सुमन्त्र ने श्रीरामचन्द्रजी का गंगा तक पहुँचने का सब हाल राजा दशरथ से कह दिया। उस समय राजा दशरथ को शोक ने बहुत ही दबा लिया था। किसी के समझाने से कुछ भी धीरज न होता था। सारी रात राजा को राम, लक्ष्मण और सीता की याद करते ही बीती। राजा को इनके वियोग से इतना दुख हुआ था कि उनके प्राण इस शोक को न सह सके और सदा के लिए परलोक को सिधार गये।

राजा के स्वर्गवास हो जाने पर भरत और शत्रुघ्न के बुलाने के लिए अयोध्या से दूत भेजा गया। जिस दिन यह दूत भरत के पास पहुँचने वाला था, उसी दिन की पहली रात में, भरत ने एक बड़ा भयानक स्वप्न देखा। उन्होंने स्वप्न में देखा कि राजा दशरथ मैले वस्त्र पहने हुए, बाल खुले हुए, पहाड़ की चोटी से गोबर के कुण्ड में गिर पड़े हैं और देखा कि उनका सिर फट गया, और तेल में डुबकी लगा रहे हैं। समुद्र सूख गये, चन्द्रमा भूमि पर गिर पड़ा संसार में अन्धकार छा गया धरती जगह जगह फट गई और वृक्ष सूख गये। फिर राजा को लोहू की नदी में बहते हुए देखा। और फिर देखा कि राजा काले वस्त्र पहने हुए, गधों के रथ में बैठ कर दक्षिण दिशा को जा रहे हैं और ऐसा मालूम हुआ कि कोई

राक्षसी उनको ज़बरदस्ती पकड़कर लिये जा रही है। इतने ही में उनकी आँखें खुल गईं। उनका जी घबराने लगा। अब दिन निकल आया और भरतजी को बेचैनी बढ़ने लगी। मुँह फीका पड़ गया।

भरतजी को बहुत उदास देखकर उनके एक मित्र ने पूछा कि आज आप इतने उदास क्यों हैं? कहिए तो आपको क्या दुःख है? तब भरत जी ने अपने उस मित्र से कहा कि भाई! क्या कहें हमने आज रात को एक बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। हमको यह फल दिखाई देता है कि हम, या राजा दशरथ, या राम, या लक्ष्मण में से किसी की मृत्यु ज़रूर होगी। इस कारण दुःख से हमारा गला सूख रहा है। जी घबराता है।

इस प्रकार भरत जी बातें कर ही रहे थे कि अचानक अयोध्या का दूत केकयराज से मिलकर भरत के पास आया और उनसे कहने लगा कि राजकुमार! आपके कुलगुरु और पुरोहित वशिष्ठजी और मन्त्री जनों ने आपको तुरन्त बुलाया है और यह कह दिया है कि बहुत ज़रूरी काम है; आने में देर न करें।

अब तो भरतजी, दूत की सटपटाती हुई बाणी में, अपने को जल्द बुलाने की बात सुन कर और भी घबरा गये! दूत से बोले कि भला यह तो कहो कि हमारे पिताजी तो प्रसन्न हैं? महात्मा श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी तो प्रसन्न हैं? माता कौशल्या, सुमित्रा तो राज़ी हैं? हमारी माता कैकेयी तो अच्छी हैं? और बहुत से

बस तुमसे क्या कहा है? सब साफ़ साफ़ कहो। दूत ने कहा कि सब प्रसन्न हैं। आपको जल्द बुलाया है। अब देर न कीजिए। बहुत जल्द रथ मँगाइए।

अब भरतजी, अपने नाना, मामा से आज्ञा लेकर तुरन्त रथ पर सवार होकर अयोध्यापुरी की ओर चल दिये। भरतजी को रास्ते में भी बुरे बुरे शकुन दिखलाई देने लगे, तब तो उनका जी और भी भय से काँपने लगा। उनको अयोध्यापुरी पहुँचना भारी हो गया। जब वे अयोध्या के पास पहुँचे तब दूत से कहने लगे कि अरे भाई! यह तो मनोहर अयोध्या उजड़ी सी दीखती है। इसमें तो सदा आनन्द के उत्सवों के बाजों की आवाज़ सुनाई पड़ती थी; वह आज नहीं सुनाई देती! आज तो सुनसान है। सड़कें भी बिना झाड़ी बुहारी ही पड़ी हैं! अरे यहाँ तो सब मनुष्यों के चेहरे पर उदासी छाई है! बताओ तो क्या बात है?

इतने ही में चलते चलते राज-महल आ गया और वे रथ से उतर भीतर पहुँचे, देखा कि राजा अपने स्थान पर नहीं हैं। फिर यह सोच कर कि शायद कैकेयी के महल में होंगे, आगे को चल दिये।

पाठको! उन बेचारे साधु को क्या खबर कि कैकेयी की करतूत से राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गये, राजा देवलोक पहुँचे। वे बेचारे तो सीधपन से वही अयोध्या और वही राज्य जानते हैं। कैसे शोक की बात है कि महल के भीतर भी आ गये पर किसी ने सच्चा

समाचार नहीं सुनाया । वे क्या जानते थे कि हमें सच्चा समाचार सुन कर धाड़े मार मार रोना पड़ेगा ।

अब भरत अपनी माता कैकेयी के महल में पहुँचे । रानी कैकेयी भी बहुत दिन में अपने प्यारे बेटे को आते देख कर प्रेम में विह्वल हो उठी । अपनी जगह से उठ कर भरत की ओर को चल दी । भरतजी ने भी अपनी माता के चरणों में प्रणाम किया और रानी कैकेयी ने भरत को छाती से लगाया और सिर सूँघा । रानी के पूछने पर भरतजी केकय देश की राज़ी ख़ुशी बता कर अपनी माता से घबरा कर बोले, माता ! यह तो बताओ कि हमें ऐसी जल्दी क्यों बुलाया है ? श्रीपिताजी कहाँ हैं ? जल्द बताओ, हम उनका दर्शन किया चाहते हैं । हमें उनके दर्शन किये बहुत दिन हुए । रानी ने जवाब दिया बेटा ! राजा तो वहाँ गये, जहाँ सबको जाना है ।

इतनी सुनते ही भरतजी "हाय ! हम मारे गये" कह कर बेहोश हो गये । भरतजी बड़े शूरवीर थे, पर इस दुख को न सह सके । थोड़ी देर में जब होश आया तब बोले, हमारे पास पिताजी ने समाचार भेजा था कि हम रामचन्द्र को राजगद्दी देते हैं और हम नित्य भगवान् का भजन और यज्ञ किया करेंगे । यह सुन कर हम बड़े प्रसन्न हुए थे कि महात्मा रामचन्द्रजी राजा होंगे । पर हाय ! यहाँ तो राजा ही न रहे । हमें बड़ा शोक है । हमारी छाती फटी आती है । हाँ यह तो बताओ कि

पिताजी को क्या रोग हुआ था, जो इतना अल्प शरीर छोड़ दिया कि हमको खबर तक न हुई।

अब भरतजी की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है, और इस तरह विलाप करने लगे—रामचन्द्रजी बड़े भाग्यशाली हैं जो मरते वक्त पिताजी की सेवा तो करली। हाय! पिताजी को अब सुध भी नहीं कि हम माताजी के घर आये हैं! नहीं तो हमारा सिर ज़रूर सूँघते। हाय! पिताजी का वह प्यार का हाथ कहाँ है जो हमारे शरीर पर फिरे! ऐसे विलाप करते करते भरतजी बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़े और थोड़ी देर में जब कुछ चेत हुआ तब अपनी माता से पूछने लगे कि हमारे शिरोमणि महाराज रामचन्द्र जी कहाँ हैं? उनको तो हमारे आने की खबर पहुँचा दो। हम धर्म की रीति से जानते हैं कि बड़े भाई पिता के समान होते हैं। इस लिए हम उनके तो चरण छू लें। वे ही अब हमारे स्वामी हैं।

कैकेयी ने कहा कि बेटा! रामचन्द्र तो सीता और लक्ष्मण सहित तपस्वियों का वेष बना कर बन को चले गये। यह सुन कर भरतजी ने कहा कि, हैंय! रामचन्द्रजी ने तो कोई पाप नहीं किया, फिर वे बन को क्यों भेजे गये! रानी कैकेयी ने कहा कि उन्होंने कोई पाप तो नहीं किया था, परन्तु मैंने उनका राज-तिलक सुन कर राजा से तुम्हारे लिए राज और रामचन्द्रजी के लिए १४ वर्ष तक बनवास माँग लिया था। इसकारण रामचन्द्र तो ब-

को चले गये और राजाजी स्वर्ग को सिधार गये और तुमको राज्य दे गये हैं। सो तुम कुछ शोक मत करो। निर्भय राज्य करो। इस बात को सुन कर भरत को बड़ा भारी दुःख हुआ और कैकेयी से कहने लगे, भला राम चन्द्रजी के बिना हमें राज्य से क्या काम। अरी दुष्टा! अब क्यों घाव पर नमक डालती है। इधर तू ने राजा को मारा और धर्मात्मा राम को तपस्वी बना वन को भेज दिया। अरे स्वार्थिनी! तूने तो हाय! हमारा सत्यानाश ही कर दिया। तूने तो अपने करने में कुछ कसर नहीं की। अरे पापिनी! हम तेरा मनोरथ पूरा नहीं करेंगे। अब तुझे दुःख देने के लिए हम वन जाकर रामचन्द्रजी को बुला, तेरे सामने ही उन्हें राजा बनावेंगे। उस वक्त हम देखेंगे कि तू क्या करती है। देख, तेरे सामने ही हम रामचन्द्रजी के दास बन, उनकी सेवा करेंगे। अरे पतिघातिनी! तूने हमको ही नहीं, सारी अयोध्या को दुःख दिया है। तुझे ज़रूर इसके बदले नरक भोगना पड़ेगा।

इतने ही में गहने कपड़ों से सजी हुई और मन में खुश होती हुई मन्थरा भी आ पहुँची। उसे देख कर लक्ष्मण के छोटे भाई की आँखें लाल हो गईं और गुस्से के मारे होठ फड़फड़ाने लगे। जब कुबड़ी मन्थरा पास आई तब शत्रुघ्न ने उसके कूब में बड़े ज़ोर से एक लात मारी और झट उसकी चोटी पकड़ कर उसी आँगन में घसीटने लगे और मारे लातों के उसकी नस नस

कर दी। भरत के समझाने पर शत्रुघ्न ने उसे अधमरा करके छोड़ दिया॥

अब भरत और शत्रुघ्न की आवाज़ कौशल्या और सुमित्रा के महलों में पहुँची तब कौशल्या सुमित्रा कहने लगी कि हे सुमित्रा, आज तो स्वार्थिनी कैकेयी बेटे भरत की आवाज सुनाई देती है। उसे देखे हमें बहु दिन हो गये। चलो उसे देख तो आवें। यह कह कौशल्या भरत के देखने के लिए चली। उधर भरत और शत्रुघ्न भी कौशल्या के दर्शन को चल पड़े। अब रास्ते में ही भेंट हो गई। भरत और शत्रुघ्न दोनों कौशल्या के चरणों में गिर पड़े। कौशल्या ने उन्हें उठाकर बड़े प्यार से गले लगाया और रोने लगीं। बस एक कौशल्या को रामचन्द्र के वियोग का दुःख बहुत याद आ गया इसलिए वे मूर्छित हो गईं। जब मूर्छा दूर हुई तब भरत से कहने लगीं कि हे पुत्र, कैकयी ने तुम्हारे लिए यह राज्य बड़ी कठिनाई से पाया है और तुम भी गद्दी होगे। सो अब यह राज्य तुमको मिल गया। बेटा, तुम निर्भय हो इसे सुख से भोगो, पर हम नहीं जानते कि राम को १४ वर्ष का वनवास दिला कर उसको क्या मिल गया। वह कहती तो राम अपने आप ही राज्य तुम को दे देते। अब हमारी यह इच्छा है कि तुम्हारी माता हमको और सुमित्रा को हमारे पुत्र के पास वन में भिजवा दे, या तुम्हारी आज्ञा हो तो हम अपने प्यारे रामचन्द्र

पास अपने आपही चली आयें या तुमही पहुँचा दो। फिर तुम थे खटके राज्य करना।

यह बातें सुन भरत को बड़ा दुःख हुआ और कौशल्याजी के चरणों में गिर पड़े और रोते रोते मूर्छा आ गई। जब कुछ होश आया तब कौशल्याजी से बोले कि माता, हमारा प्रेम जो रामचन्द्रजी में है और हमें रामचन्द्रजी जितना चाहते हैं यह सब तुम जानती ही हो। हमको इन बातों का कुछ भी हाल मालूम नहीं। इस कारण हमारा कुछ दोष नहीं है। हमको दोष न दो। हे माता, जिसकी सलाह से रामचन्द्रजी बन को गये हों उसको सारे शास्त्र पढ़ने पर भी कुछ विद्या न आवे। वह नीचों का टहलवा बने। गाय के मारने का पाप उसको लगे। जिसकी सलाह से श्रीरामचन्द्र बन को गये हों उसको वह पाप लगे जो गुरु, माता, पिता आदि बड़ों का अपमान करने से होता है। उसको वह पाप हो जो मित्रों के साथ धोखा देने में, प्रतिज्ञा करके उसको पूरा न करने में और जो स्त्री, बालक, बूढ़ों के रहते अपने आप अकेले ही मीठी चीज़ खाने में होता है। उसको वह पाप लगे जो बिना अपराध नौकर के छुड़ाने में हो। वह सदा संग्राम में हारे और सदा वैरियों से दबा रहे। वह सदा शराब पीता रहे और जुआ खेलता रहे। वह सदा अधर्म किया करे, उसको यज्ञ बिगाड़ने का पाप लगे। उसको वह पाप लगे जो प्यासे को पानी न पिलाने में होता है। इस प्रकार भरत सौगन्द खाते खाते जब बेहोश हो गये तब

कौशल्या ने उनको छाती से लगाया और कहा कि हे पुत्र, तुम ऐसी सौगन्दों से हमारा मन थामते हो। तुमको दुःखी देख हमको भी दुःख होता है। तुम सच्चे धर्मात्मा हो। तुमने अपना धर्म नहीं छोड़ा, इस कारण भगवान तुमको राज़ी रक्खे।

फिर वसिष्ठजी की आज्ञा से भरत ने राजा दशरथ की प्रेत-क्रिया की। फिर सब मन्त्री जन और सब माताओं ने भरत को राज करने के लिए बहुत कुछ समझाया, परन्तु भरत बड़े धर्मात्मा और श्रीरामचन्द्रजी के बड़े प्यारे थे, इसलिए उन्होंने सब से यही कह दिया कि रघुकुल में सदा से यह रीति चली आई है कि सबसे बड़ा भाई राजा बने। और धर्म से होना भी ऐसा ही चाहिए। फिर आप लोग मुझसे ऐसा अधर्म क्यों कराते हैं? भला रामचन्द्रजी के होते हुए हम कैसे राज-काज कर सकते हैं? ऐसे अधर्म का काम हम नहीं कर सकते। जो कहो कि श्रीराम चन्द्रजी तो बन को चले गये, उनके पीछे तुमको ही राज काज करना चाहिए, तो हम सौगन्द खाकर कहते हैं कि हम बिना रामचन्द्रजी के राज कभी न लेंगे। हम अभी श्रीरामचन्द्रजी के दर्शनों को जाते हैं और उनको वापस ला राज तिलक कराकर उनकी सेवा करेंगे।

वसिष्ठजी ने भी भरत को बहुत कुछ समझाया, परन्तु भला धर्मवीर कब माननेवाले थे। उन्होंने वसिष्ठजी से कहा कि गुरुजी, मुझे आप की सलाह पर बड़ा ही अफ़सोस होता है। क्या मैं राजा दशरथ का पुत्र नहीं हूँ?

जो ऐसे अधर्म का काम करूँ ? गुरु जी, मैं आप से ठीक कहता हूँ। मैं अब रामचन्द्र जी के बुलाने के लिए ज़रूर जाऊँगा और सबके समझाने से श्रीरामचन्द्रजी ज़रूर चले ही आयेंगे और जो नहीं आये तो हम भी उनके साथ वन में ही रहेंगे। उनके बिना हमको इस अयोध्या से कुछ मत लब नहीं।

अब भरत श्रीरामचन्द्रजी के पास वन को चलने लगे तब उनकी मातायें, उनकी सेनाये और बहुत से पुरवासी लोग उनके मना करने पर भी श्रीरामचन्द्रजी के देखने के लिए भरत के पीछे पीछे चल दिये। अब सब लोग बड़ी खुशी में हैं कि हमको श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन होंगे, उनको यहाँ बुलाकर लाये गे और उनको राजा बना कर सब सुख से रहेंगे।

जिस रास्ते से श्रीरामचन्द्रजी वन को गये थे, उसी रास्ते से भरत भी पूछते पूछते जाने लगे। भरतजी को भरद्वाजजी और बाल्मीकिजी ने श्रीरामचन्द्रजी का ठीक ठीक पता दे दिया कि श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूट पर्वत पर बास करते हैं। भरतजी उसी ओर चल दिये। जब चित्रकूट थोड़ी ही दूर रहा तब भरतजी श्रीरामचन्द्रजी की कुटी को देखने के लिए एक बड़े ऊँचे पेड़ पर चढ़ गये और उनकी कुटी और अग्निहोत्र का धुआँ दिखाई देने लगा। अब मन में भरतजी को बड़ी खुशी हुई। नीचे उतर कर भरतजी ने वसिष्ठजी से कहा कि आप सब माताओं को लेकर पीछे पीछे आइए। और सब फ़ौज

को वहीं ठहरने की आज्ञा देकर आप शत्रुघ्न और सुमन्त के साथ श्रीरामचन्द्रजी की कुटी की ओर पैदल ही चल दिये।

जब भरतजी की सेना उस वन में पहुँची तब बहुत सी धूल उड़ती देख और वनैले जीवों को इधर उधर भागते देख रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा कि लक्ष्मण! देखो तो यह बड़ा कोलाहल कहाँ मच रहा है? ये हाथी, भैंसे, हिरन आदि जीव सिंहों से डर कर तो नहीं भागे? या कोई राजकुमार तो शिकार खेलने नहीं आया? देखो तो यह हल्ला गुल्ला क्यों मच रहा है? यह सुन लक्ष्मण तुरन्त एक बड़े ऊंचे पेड़ पर चढ़ कर चारों ओर देखने लगे। उत्तर दिशा में बहुत हाथी, घोड़े और सेना सी दिखाई पड़ी। यह देखते ही लक्ष्मण झट उस पेड़ पर से उतर श्रीरामचन्द्रजी से बोले कि महाराज! यह तो बड़ी भारी सेना है! अब आप सीता जी को किसी गुफा में बैठाल कर अपने कवच (बख़्तर) आदि पहन लीजिए और इस सेना को मार भगाइए। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि यह तो देखो कि सेना है किसकी। इस पर लक्ष्मण बड़े क्रोध में होकर बोले कि महाराज! है किसकी! वही कैकेयी के पुत्र भरत हम दोनों के मारने के लिए आये हैं। उन्हीं की सेना है। इसलिए यह धूल उड़ती चली आ रही है। अब हमको अस्त्र शस्त्र बाँध कर युद्ध को तैयार हो जाना चाहिए। आज हम भरत को संग्राम में देखेंगे। जिसके कारण आपने, हमने और इन सीताजी ने राज-पाट

छोड़ा और वन में कष्ट उठाया, हे वीर, ये वही तो भरत आ रहे हैं। अब हम इनको मार डालेंगे। इनके मारने में कुछ पाप भी नहीं होगा, क्योंकि जो पहले दुःख दे उसका मारना कुछ बुरा नहीं है। बस भरत के मारे जाने पर आप निर्भय राज करना। निस्सन्देह राज के लोभ में कैकेयी आज अपने पुत्र को हमारे हाथ से मरा हुआ देखेगी। पीछे से उसके बाप भाई भी, जो इसकी सहायता करने आवेंगे, सब मारे जायँगे और फिर आप भी मारी जायगी। आज धरती बड़े भार से हलकी होगी और हमारा भी क्रोध उतर जायगा। आज आप हमारे तीरों से भरत की सारी सेना कटी देखेंगे। आज चील कौए, गीदड़ और कुत्ते भी पेट भर भोजन पावेंगे।

लक्ष्मणजी को बहुत क्रुद्ध देख कर और उनके क्रोध और वीर रस से भरे हुए वचनों को सुनकर महात्मा श्री रामचन्द्रजी कहने लगे कि भाई, यहाँ तीर तलवार का क्या काम। यहाँ तो महा-बलवान् और धर्मात्मा भरत आपही आ रहे हैं। हम तो पिताजी से १४ वर्ष वनवास की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। अब भला भरत को मार सारी दुनिया में अपनी बुराई करावेंगे! कभी नहीं। हे लक्ष्मण, जो चीज़ अपने भाई-बन्धु के नाश से मिले, हम उसे बहुत बुरा समझते हैं। हम भाइयों की हानि से अपना सुख नहीं चाहते। नहीं तो तुमसे वीर के होते हमको सारी पृथ्वी का राज्य मिलना कठिन नहीं है। पर अधर्म से तो हम तीनों लोक का भी राज नहीं चाहते। हमको

जो सुख तुम्हारे और भरत शत्रुघ्न के बिना हो, उसको अग्नि जला दे। हमारी समझ में तो जब भरत ननसाल से आये होंगे तब हमारे बनवास की खबर सुनी होगी। भरत धर्मात्मा तो हैं हीं; अपनी कुल-रीति और धर्म-मर्यादा को याद कर माता को बुरा भला कह, पिताजी से आज्ञा लेकर हमसे मिलने और राज लौटाने को आये होंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि भरत हमको दुःख देने आये हों। क्या कभी तुम्हारी भरत से अनबन हो गई थी जो ऐसा विचार करते हो? प्यारे, देखो, अब तुम भरत से कोई कड़ी बात न कहना और जो कोई भी कड़वी या चुभती बात तुमने भरत से कही तो हमसे ही कही समझना। जो राज के लोभ से तुम ऐसा समझते हो तो जब भरत हमसे मिलेंगे, तब हम उनसे कह देंगे कि तुम राज लक्ष्मण को दे दो। याद रक्खो, जिस समय हमने भरत से कहा, वे तुरन्त ही राज तुमको देदेंगे। यह सुन कर लज्जा के मारे लक्ष्मण का सिर नीचा हो गया। और फिर रामचन्द्रजी से उन्होंने क्षमा माँगी और कहा कि अब हम भरत को भी पिताजी के समान समझेंगे।

भरतजी, अपने भाई शत्रुघ्न और गुरु और मंत्रियों समेत चलते चलते श्रीरामचन्द्रजी की कुटी के पास आ गये। भरतजी ने देखा कि रामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मृगछाला और चीर वकल पहने बैठे हैं। बस देखते ही शोकातुर हो रोने लगे और बोले—हा! जिन रामचन्द्रजी के शरीर में सुगन्धित केसर चन्दन

और कपूर आदि लगाये जाते थे, आज उनके शरीर में धूल लग रही है। हा! जिस के कारण बड़े भाई को इतना कष्ट पहुँचा उस मेरे जीवन को धिक्कार है कि जिसकी संसार भर में निन्दा हुई! ऐसे कहते कहते भरतजी ने श्रीरामचन्द्रजी के चरण छूने के लिए हाथ बढ़ाये, पर हाथ न पहुँचे और शोक से बेहोश हो कर धरती पर गिर पड़े। शत्रुघ्न ने श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रणाम किया और फिर श्रीरामचन्द्रजी ने दोनों भाइयों को उठा कर छाती से लगा लिया। फिर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी, सुमन्त और गुह को भी छाती से लगा कर मिले।

अब रामचन्द्रजी ने भरत के आँसू पोछ कर उनको अपनी गोद में बिठा लिया और भरत से बोले—प्यारे, तुम्हारे पिताजी कहाँ गये, जो तुम वन को आये? मालूम होता है उन्होंने शरीर त्याग दिया। हे तात, तुम तो बहुत दिनों से ननसाल को गये थे। बहुत दिन में मिलने और दुर्बल हो जाने के कारण हमने तुमको देर में पहचाना। भला तुम गुरु वशिष्ठजी की सेवा तो करते हो? भला कौशल्या केकयी और सुमित्रा तो राज़ी हैं? भला अग्निहोत्र के समय को याद दिलाने के लिए तुमने वेदपाठी पुरोहित को नियत कर लिया है? हे तात, बाण विद्या और सब शस्त्रों के जानने वाले सुधन्वाजी को प्रसन्न रखते हो? भला तुम्हारे मन्त्री तो अच्छी सलाह देते हैं? भला तुम्हारे मन की बात समय से पहले तो

कोई नहीं जान लेता ? भला तुम्हारा सेनापति तो अच्छा है ? सेना को नौकरी देने में तो तुम कंजूसी नहीं करते ! भला प्रजा का तुम पर प्रेम तो है ? चोर डाकुओं से प्रजा की रक्षा तो तुम अच्छी तरह करते हो ! अपनी स्त्री की रक्षा अच्छी तरह से करते हो ! अच्छे अच्छे भोजन आप अकेले तो नहीं कर लते, अपने बान्धवों को भी खिलाते हो या नहीं !

इतना सुन कर भरतजी ने कहा कि महाराज, आप हमसे राजनीति की बातें क्यों पूछते हैं ! हमें इनसे क्या काम । हमारी तो कुल-रीति है कि बड़े भाई के होते छोटा भाई राजा नहीं हो सकता, इसलिए आप हमारे साथ अयोध्या चलें और कुल की बात रखने के लिए राज-तिलक कराकर राजा बनें और प्रजा की रक्षा करें। क्योंकि जिन राजा को मनुष्य राजा मानते थे व तो देवता हो गये। हम तो केकय देश में रहे, आप बन में, यहाँ आप के शोक में राजा स्वर्ग को चले गये। अब उठिए, सीता और लक्ष्मण सहित चल कर उजड़ी अयोध्या फिर से बसाइए। हे राम, आपने हमारी माता की इच्छा पूरी की और हम को राज दिया। पर अब आपका यही राज हम आपको देते हैं। आप ऐसा कीजिए जिसमें हम लोग आप को राजसिंहासन पर बैठे देखें ।

जब श्रीरामचन्द्रजी ने भरत के मुँह से राजा दशरथ के स्वर्गवास का समाचार सुना तब "हा !" कह कर दोनों हाथ माथे पर रख, मूर्छित हो गए। जब मूर्छा

जागी तब भरत से बोले—भरत! जब श्रीपिताजी ही स्वर्ग को चले गये तब हम अब अयोध्या जाकर क्या करेंगे। भला अब हम चल कर उन महात्मा का कौन सा काम करेंगे। हा! अब हमको बिना पिताजी के कौन सिखावेगा। जिन बातों से हमारे कानों को सुख होता था उन्हें अब कौन सुनावेगा। हे लक्ष्मण, अब हम तुम बिना पिता के हो गये। सीताजी, तुम भी बिना ससुर की हो गई।

इतने ही में सब मनुष्य और वसिष्ठजी भी माताओं सहित श्रीरामचन्द्रजी की कुटी पर आ पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजी सबसे मिले और माताओं के चरणों में गिरे और लक्ष्मणजी ने भी पाँव छूकर माताओं की वन्दना की और सीताजी भी सासुओं के चरण छू, रोने लगीं। उन्होंने सीता को आशीर्वाद दिया। और सब रोते रोते बैठ गये।

श्रीरामचन्द्रजी की माताओं ने और सब अयोध्या वासियों ने मिलकर श्रीरामचन्द्रजी से अयोध्या चलने के लिए बहुत कुछ कहा, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी कोई साधारण आदमी नहीं थे जो राज के लोभ में आकर अपने धर्म को छोड़ देते। छोटा सा राज तो क्या, उनको त्रिलोकी का सारा राज भी धर्म के सामने तिनके के समान था। उन्होंने सबको समझा दिया और भरत से बोले—भाई! तुम्हारा प्रेम हम सब जानते हैं। तुम बड़े धर्मात्मा हो। तुम्हारा कुछ दोष नहीं। जो कुछ होने वाला होता है उसे

कोई मिटा नहीं सकता। अब तुमको चाहिए कि जिस तरह हम पिताजी की आज्ञा मान कर वन को चले आये इसी तरह तुम भी उनकी आज्ञा से अयोध्या में बस,वहाँ का सब राज-काज सँभालो। यही तुम्हारा धर्म है शत्रुघ्न तुम्हारे साथ हैं। तुम सब काम कर सकते हो। हम भी १४ वर्ष बिताकर अयोध्या को लौट आवेंगे।

जब किसी के समझाने से भी श्रीरामचन्द्रजी ने अयोध्या को लौटना नहीं चाहा तब हार कर भरतजी ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा कि हे आर्य्य,जाने दीजिए अपनी इन पादुकाओं पर अपने चरण रख दीजिए तो हम इन्हीं को राजगद्दी पर रखकर इनके सहारे से सब राज-काज कर लेंगे। हम १४ वर्ष तक जटा रखा, वल्कल पहन, नगर से बाहर रहेंगे। पर हम प्रतिज्ञा करते हैं कि १४ वर्ष के पूरे होते ही, उसी दिन, जो आपका दर्शन अयोध्या में हमको न होगा तो हम तुरन्त अग्नि में भस्म हो जायँगे।

अब श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी खड़ाऊँ भरत को दे दी और वादा किया कि हम १४ वर्ष पूरे होते ही, ज़रूर तुम्हारे पास आवेंगे। और शत्रुघ्न से कहा कि हे शत्रुघ्न माता कैकेयी की सेवा करते रहना। कभी क्रोध न करना। हम तुमको अपनी और सीता की सौगन्ध देते हैं।

अब भरतजी उन खड़ाऊँ को लेकर अयोध्या को चले आये और उन्हें राजसिंहासन पर रख कर सब राज-काज

करने कराने लगे और आप अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नगर के बाहर, मुनिवेश बनाकर रहने लगे।

सोरठा ।

भरतचरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं ।
सीय रामपद प्रेम, अवशि होइ भव रस विरति ॥

अरण्य-(वन)-काण्ड

इस काण्ड में—विराधवध, पञ्चवटी को जाना, सूर्पणखा के नाक कान काटना, खरदूषण-युद्ध, और मारीच का संवाद, सोने के हिरन-रूपी मारीच का मारना, सीताहरण, जटायु-युद्ध, सीतावियोग, इत्यादि बातों का वर्णन है।

भरत के चले जाने के बाद, एक दिन, श्री रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण और सीताजी से सलाह करके यह विचार किया कि अब हमको चित्रकूट पर नहीं रहना चाहिए क्योंकि अब यहाँ का पता अयोध्यावासी लोग जान गये हैं। जब जब उन लोगों को हमारी सुध आवेगी तब तब वे झट यहाँ आ आकर हम लोगों को दिक किया करेंगे, रात दिन भीड़ लगी रहेगी। इससे ऋषियों को भी कष्ट होगा और हमको सदा उनका ही ध्यान बना रहेगा; भजन पूजन कुछ न हो सकेगा।

इसलिए यहाँ से कहीं और किसी वन में चलना चाहिए।

अब श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजी की सलाह से दण्डक नाम के वन को चल दिये और अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ अत्रि मुनि ने इनका बहुत कुछ सम्मान किया; बहुत से कन्द, मूल, फल खाने को दिये। अत्रि मुनि की एक बूढ़ी पत्नी, जिसका नाम अनसूया था, बड़ी ही धर्मात्मा थीं। सीताजी ने अनसूयाजी को प्रणाम किया। अनसूयाजी ने उनको आशिस देने के सिवा बहुत अच्छी तरह से स्त्रियों के धर्म का उपदेश दिया। उस उपदेश को हम गोस्वामी तुलसीदास जी की मनोहर कविता में से सुनाते हैं।

कह ऋषिवधू सरल मृदु बानी।
नारिधर्म कछु ब्याज बखानी॥
मातु पिता भ्राता हितकारी।
मित सुखप्रद सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपति काल परखि यहि चारी॥
वृद्ध रोगबश जड़ धनहीना।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना।
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥

मांस खाते हैं। इस स्त्री को हम अपनी स्त्री बनाकर और तुम्हें मारकर अभी रुधिर पीयेंगे।

ऐसे कहत निशाचर धावा।
अब नहिं बचहु तुम्हें मैं खावा॥
तासु तेज शत मरुत समाना।
टूटहिं तरु बहु उड़हिं पखाना॥
जीव जन्तु जहँ लगि रहे जेते।
व्याकुल भाजि चले सब तेते॥

इस प्रकार बड़े वेग से आकर उस राक्षस न राम और लक्ष्मण के बीच में से सीताजी को पकड़ कर कन्धे पर बिठा लिया। उस समय जानकी डर से काँपने लगीं। श्रीरामचन्द्रजी बहुत उदास होकर लक्ष्मणजी स कहने लगे कि देखो लक्ष्मण हमारी पतिव्रता स्त्री जनककुमारी जानकी राक्षस के कन्धे पर बैठी है। कहाँ राजकुमारी और कहाँ यह राक्षस। अहा! अब कैकेयी का मनोरथ सफल हुआ। उसको अपने बेटे का राज दिला कर ही सन्तोष नहीं हुआ, उसने बड़ी दूर तक सोच लिया था। वह जानती थी कि जो ये यहाँ रहेंगे तो कभी राज में कुछ गड़बड़ करें, इसलिए उसने हमको बनवास दिला दिया। उसकी इच्छा अब पूरी हो गई। भाई लक्ष्मण! मुझे जितना दुःख आज सीताजी को इस दशा में देखकर हुआ है उतना पिताजी के और राज के छोड़ने में भी नहीं हुआ।

श्रीरामचन्द्रजी को इस प्रकार दुःखी देख कर लक्ष्मणजी को भी दुःख हुआ और क्रोध में आँखें लाल हो गई और बोले—हे वीर, आप ऐसी दीनों की सी बात क्यों कहते हैं? आप देखते रहिए, हम अभी अपने पैने बाणों से इस राक्षस को मारे डालते हैं। जो क्रोध हमको आपके वन आने पर भरत पर हुआ था वह क्रोध अब इस राक्षस पर काम देगा। अभी अभी यह मारा जायगा और इसका रुधिर पीकर धरती तृप्त हो जायगी। और विराध से कहा कि तुम कौन हो जो इस वन में मनमौजी घूमते फिरते हो? विराध ने बड़े ज़ोर से कहा कि तुम दोनों कौन हो, कहाँ जाओगे, जल्द बताओ? श्रीरामचन्द्र ने कहा कि हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं। तुम बतलाओ कौन हो जो इस तरह बेधड़क फिरते हो? राक्षस ने कहा कि "जव" हमारा बाप और "सत्यहदा" हमारी माता है। ब्रह्माजी का तप कर हमने यह वर पाया है कि मामूली शस्त्रों से हम नहीं मारे जा सकते और न हमारा कोई भंग कर सकता है। बस जानापूछी तो हो चुकी। अब तुम इस स्त्री को यहीं छोड़ जिस रास्ते से आये हो उसी रास्ते से चुपके चले जाओ। इस समय हम तुम्हारा प्राण लेना नहीं चाहते।

श्रीरामचन्द्रजी को उस राक्षस के ऐसे गर्व के वचन सुनकर बड़ा क्रोध आया और बोले—अरे नीच, अब हमने जाना कि तेरे सिर पर काल खेल रहा है। तू अब ज़रूर मारा जायगा। अब हम तुझको जीता नहीं छोड़ेंगे।

सकता था। अब आप हमारा और हमारे भाई का पौरुष देखेंगे कि क्या करते हैं। आप चिन्ता न करें। अब हम ज़रूर इन राक्षसों को मारेंगे।

अब श्रीरामचन्द्रजी उन ऋषियों से बिदा हो कर सुतीक्ष्णजी के आश्रम को चल दिये। वहाँ एक रात ठहर कर सबेरे अगस्त्य मुनि के आश्रम को चले। रास्ते में सीताजी ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा कि हे स्वामिन्, धर्म की बड़ी सूक्ष्म गति है। वह बड़े आडम्बर से नहीं मिल सकता। इस आडम्बर में तीन दुःख होते हैं—१—झूठ बोलना; २—पर-स्त्री-गमन और ३—बिना बैर किसी को मारना। सो पहली दो बातें तो आप में कभी नहीं हुई और न होंगी पर यह तीसरी बात—जीव हिंसा की—आप में मौजूद है। क्योंकि आप अभी ऋषियों से प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि हम आपके दुःख देनेवाले राक्षसों को मारेंगे। जब से आप इस दण्डक वन में आये हैं तब से ही आप में यह बात पैदा हुई है। इससे हमको बड़ा सोच है और सोचा करती हैं कि इसका क्या फल होगा। हम तो आपका इस वन में आना अच्छा नहीं जानतीं।

शस्त्र धारण करने से क्या मतलब ? तो वन में विचरते हुए क्षत्रियों का धनुष धारण करना, निरपराध जीवों के मारने को नहीं, वरन् जो वन में दुःखी लोग हैं उनकी रक्षा करने के लिए है। इसलिए आप हम दोनों की ही रक्षा कीजिए। फिर कोई कोई बातें एक साथ भली नहीं मालूम होतीं। भला कहाँ शस्त्र का बाँधना और कहाँ वन में घूमना! कहाँ क्षत्रिय का धर्म और कहाँ तपस्या करना! इसलिए जहाँ का जो धर्म हो वहाँ वही करना चाहिए। यहाँ वन में आप को शस्त्रों से क्या काम। जब आप अयोध्या जायँगे तब फिर शस्त्र धारण कर लेना। आप की माता की भी यही आज्ञा थी कि मुनि-वेष बना कर वन में बसना। कुछ क्षत्रिय-वेष बनाने को तो उन्होंने कहा ही न था। जिस धर्म की आपको आज्ञा है वही कीजिए। क्योंकि धर्म ही से अर्थ और धर्म ही से सुख होता है। इस असार संसार में एक धर्म ही सार है। इसलिए आप भी अपने धर्म पर रहिए।

सीताजी के ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि हे धर्मात्मा जनककुमारी, तुमने जो बातें कही हैं, वे बहुत अच्छी हैं। अब हम तुम्हारी बातों का जवाब देते हैं, सुनो। क्षत्रिय लोग जो धनुष धारण करते हैं, वह इसी लिए कि कोई दुःखी होकर हमको दुःखकी बात न सुनावे। क्षत्रियों को ऐसा बन्दोबस्त करना चाहिए कि किसी के दुःखित वचन उनके कान तक न पहुँचे। सो एक नहीं यहाँ तो अनेक ऋषि दुःखी हो

आये हैं। ये ऋषि लोग इन राक्षसों से बहुत सताये गये हैं। यहाँ के राक्षसों ने बहुत से ऋषि खा डाले हैं। जो बचे हैं वे हमारी शरण आये हैं। हमने उनसे उनको दुःखी देखकर प्रतिज्ञा कर ली है कि हम आपकी सेवा करेंगे और आपके शत्रु राक्षसों का मारेंगे। हे जानकी, हमने मुनि लोगों के सामने ऐसा प्रण किया है। अब, जब तक हमारा शरीर है और जब तक शरीर में प्राण रहेंगे तब तक, उनकी रक्षा करके अपने वचन पूरे करें वचनों से नहीं फिरेंगे। हम चाहे तुमको भी छोड़ दें, और लक्ष्मण को भी छोड़ दें और अपने प्राण भी छोड़ दें परन्तु मुनियों से जो प्रण किया है उसे कभी न छोड़ेंगे। तुमने जो हमारे सुख के लिए कुछ कहा है वह हमारे प्रेम से कहा है, इससे हम बहुत प्रसन्न हैं।

इस प्रकार बात चीत करते हुए श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीता सहित सुतीक्ष्णजी के आश्रम में पहुँचे। वहाँ सुतीक्ष्णजी से मिल कर और उनके बताये हुए रास्ते से फिर अगस्त्य मुनि के आश्रम को चल दिये जब वहाँ पहुँचे तब इनको देख कर अगस्त्य मुनि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने तरह तरह के फल, मूल, कन्द इन्हें खाने को दिये। ये रात भर वहीं रहे। जब प्रातःकाल हुआ तब श्रीरामचन्द्रजी ने अपने रहने के लिए अगस्त्यजी से किसी अच्छे स्थान का पता पूछा, तो उन्होंने सब ऋतुओं में सुख देनेवाला "पंचवटी" नामक स्थान जो दण्डक वन में था, बता दिया।

अब अगस्त्य मुनि से विदा होकर श्रीरामचन्द्रजी उनके बताये हुए रास्ते से पञ्चवटी पर पहुँच गये। पञ्चवटी पर पहुँच कर लक्ष्मणजी ने एक बहुत सुन्दर कुटी बनाई। उस कुटी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और तीनों उसमें सुखसे रहने लगे।

जब ते राम कीन तहँ बासा।
सुखी भये मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदी ताल छवि छाये।
दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाये॥
खग मृग बृन्द अनन्दित रहहीं।
मधुप मधुर गुंजत छवि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा।
जहा प्रगट रघुबीर बिराजा॥

पञ्चवटी पर रहते हुए श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को धर्म और नीति के अनेक उपदेश दिये।

इस प्रकार आपस में बातें करते करते बहुत दिन बीत गये। एक दिन सीताजी को साथ लेकर दोनोंभाई गोदावरी नदी में स्नान करने के लिए गये। जब वहा से आकर अपनी कुटी में तीनों सुख से बैठ गये तब उस समय, एक राक्षसी घूमती घामती श्रीरामचन्द्रजी की कुटी के पास आई और उनकी सांवरी सूरत और मोहनी मूरत को देखकर मोहित हो गई। फिर थोड़ी देर में उसने कहा कि तुम मुनियों का वेष बनाये, जटा रखाये और धनुष बाण लिये हुए इस राक्षसो के देश में क्यों आये हो?

यहाँ आने का क्या मतलब है और तुम कौन हो? सब हम को बतलाओ। यह सुन कर श्रीरामचन्द्रजी ने सब बतला दिया कि देवताओं से भी बलवान् राजा दशरथ के हम बड़े बेटे हैं। यह हमारे छोटे भाई लक्ष्मण हैं। यह जनककुमारी हमारी नारी है। सीता इनका नाम है। हम अपने माता पिता की आज्ञा का पालन करते हुए इस बन में बसते हैं। अब तुम तो बतलाओ, तुम किसकी कन्या हो और क्या तुम्हारा नाम है और तुम किसकी स्त्री हो? वैसे तो तुम वेष से राक्षसी जान पड़ती हो। कहो तो इस निर्जन बन में कैसे आई हो?

राक्षसी ने कहा कि हमारा नाम शूर्पणखा है और हम राक्षसी हैं। जब चाहती हैं तभी हम अपना मनमाना रूप बना लेती हैं। इस बन में हम अकेली ही निडर फिरा करती हैं। तुमने कभी लंकेश्वर राजा रावण का नाम सुना होगा। हम उन्हीं की बहन हैं। हमारे दो भाई और हैं। उनमें एक का नाम विभीषण है। वे बड़े धर्मात्मा हैं। उनका स्वभाव बड़ा नेक है। और, दूसरे कुम्भकर्ण हैं। वे बड़े वीर हैं, पर सोते बहुत दिन तक हैं। इनके सिवा खर, दूषण दो भाई और बड़े बलवान् हैं। हममें भी किसी भाई से कम बल नहीं है। हम आपको अपना पति बनाया चाहती हैं। इसी लिये हम यहां आई हैं। अब आप हमारे पति बनिए। हममें बड़ा तेज और बल है। हम चाहे जहां चली जा सकती हैं। हमारा रोकने वाला कोई नहीं। जो तुम यह कहो कि इस कुरूपा सीता

की क्या गति होगी, सो इसको तो हम तुम्हारे इस भाई सहित खा ही लेंगी । क्योंकि ये मनुष्य तो हैं ही ।

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने शूर्पणखा से हँसकर धीरे से कहा कि हमारा तो विवाह हो गया । देखो, हमारी प्राणप्यारी स्त्री यह बैठी है । अब हम दूसरा विवाह नहीं कर सकते । हाँ, यह हमारे छोटे भाई लक्ष्मण बड़े शूरवीर हैं और रूपवान् भी हैं । तुम इनके साथ जरूर विवाह कर लो । इनके साथ तुम अकेली भी रहोगी और सौतिया-डाह भी न होगा । अब शूर्पणखा ने लक्ष्मणजी से जाकर कहा कि आप हमारे साथ विवाह कर लें । हमसे अच्छी खूबसूरत स्त्री आपको और कोई नहीं मिलेगी । लक्ष्मणजी ने मुसकरा कर कहा कि हे मृगनयनी, हम तो श्रीरामचन्द्रजी के दास हैं । भला तुम क्यों दासी बनना चाहती हो ? हमारी तरह तुम भी पराधीन हो जाओगी। पराधीनता में सुख कहाँ ! किसीने कहा है कि 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' । इस लिए तुम हमारे बड़े भाई की ही दूसरी स्त्री बनो । तुम्हारे हमारे रंग में भी तो भेद है । इनकी यह स्त्री तो तुम्हारी समझ में कुरूपा, कुबरी और बूढ़ी है ही, बस तुम्हारे मिलते ही वे इसे छोड़ देंगे ।

अब वह राक्षसी फिर श्रीरामचन्द्रजी के पास आई । उन्होंने फिर लक्ष्मणजी के पास भेज दिया । इसी तरह जब कई बार लौटा पौटी हुई तब राक्षसी, यह विचार कर कि इस सीता के सामने ये मुझे पसन्द नहीं करते, उनसे कहने लगी कि हम तुम्हारे देखते ही देखते इस स्त्री को

खाये लेती हूँ। फिर हम अकेली येसीत की हां, तुम्हारे साथ विचरेंगी। यह कह कर वह राक्षसी मुँह फाड़ और आँखें निकाल कर जानकीजी की ओर दौड़ी। इसे आती हुई देखकर सीताजी बहुत घबराई। यह देख श्रीराम चन्द्रजी ने क्रोध में आकर शूर्पणखा को पकड़ कर लक्ष्मण जी से कहा कि देखो भाई, नीचों से कभी हँसी ठट्ठा नहीं करना चाहिए। देखो यह तो अभी सीताजी को खाये लेती थी। देखो सीताजी डर से कैसी काँप रही हैं। अब तुम जल्द इस दुष्टा राक्षसी का कोई अङ्ग काट लो। इतना सुनते ही लक्ष्मणजी ने तलवार से झट उस राक्षसी के नाक कान काट लिये। खून की धारा बहने लगी। अब वह नकटी और कनकटी शूर्पणखा, जिसके नाक के से नख थे बड़े ज़ोर से रोती हुई इधर उधर वन में फिरने लगी। *श्रीरामचन्द्रजी को गालियाँ देती हुई वह* अपने भाई खरदूषण के पास दौड़ी हुई गई। वहाँ जाकर रोती हुई धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी।

जब उसके भाई खर ने अपनी बहन के नाक कान कटे देखे तब क्रोध में लाल आँखें करके बोला – हे बहन, उठो, यह किसने तुम्हारे नाक कान काटे हैं? भला वह कौन है जिसने ज़हर से भरे हुए काले साँप को उँगली से छेड़ा है? वह कौन है जिसने काल-फाँसी में अपना गला डाला है? वह तो किस खेत की मूली है, देवताओं का राजा इन्द्र भी हमसे बैर बाँध कर सुख से नहीं सो सकता। जिसने तुम्हारे साथ यह बुरा बर्ताव किया है,

वह आज ज़रूर हमारे पैने पैने तीरों से मारा जायगा। हम नहीं जानते, आज किसके सिर पर काल खेल रहा है? आज किसके मास से चील कौओं का पेट भरेगा? हे बहन, उठो, बतला तो वो वह है कौन, जिसने तुम्हारी यह दशा बनाई है?

अब शूर्पणखा क्रोध से रोती हुई अपने भाई से बोली—भाई, रूपवान्, शूर, बीर, तपस्वी, राजा दशरथ के पुत्र दोनों भाई इस बन में ठहर रहे हैं और एक बड़ी ख़ूब सूरत सीता नाम की स्त्री उनके साथ है। उन्हीं दोनों ने हमारे नाक कान काट लिये हैं। अब मैं जब तक उनका ख़ून न पीलूँ तब तक मुझे चैन नहीं पड़ेगी। यही पहले पहल तुमसे काम पड़ा है। बस इसे कर दो। नहीं तो मैं मर जाऊँगी।

इतना सुन कर शूर्पणखा के भाई ने क्रोध में भरकर अपने सेनापति को बुलाकर कह दिया कि तुम (१४०००) चौदह हज़ार राक्षसों को ले जाओ। इस बन में दो भाई स्त्री सहित ठहरे हैं, उन्हें पकड़ कर जल्द ले आओ, जिससे हमारी बहन उनका ख़ून पीले। इतना सुनते ही वह सेनापति बहुत से राक्षसों को साथ लेकर और शूर्पणखा को आगे करके श्रीरामचन्द्रजी के पकड़ने को चल दिया।

काले बादल की तरह आती हुई राक्षसों की सेना को देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने अपने भाई से कहा कि लक्ष्मण, तुम यहीं बैठो और सीताजी की रक्षा करो। हम अकेले ही इन राक्षसों को, जिन्हें शूर्पणखा चढ़ा कर लाई है,

मारेंगे। अब श्रीरामचन्द्रजी कवच पहन कर, धनुष को टंकारते हुए राक्षसों की ओर चल दिये और बोले—रे राक्षस लोगो, हम राजा दशरथ के पुत्र-पतोहू इस वन में आये हैं और तपस्या करते हैं। तुम हम पर क्यों चढ़े आते हो? हमने ऋषियों से प्रतिज्ञा कर ली है कि हम पापी राक्षसों को मारेंगे। इसी लिए हम धनुष पर डोर चढ़ाये हुए हैं। जो तुम लोगों को अपने प्राण प्यारे हों तो यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो हमारे सामने खड़े हो जाओ। ऐसो भागना मत। राक्षस भी बड़े निडर थे। वे हँस कर कहने लगे कि ओहो! हमारे राजा खर को छेड़ कर तुम जीते रहना चाहते हो? भला! हमारी इतनी भारी सेना से तुम अकेले ही लड़ोगे? अजी, लड़ना तो क्या तुम तो हमारे सामने ठहर भी नहीं सकते। यह कह कर राक्षस लोग अपने अपने शस्त्र उठा कर श्रीरामचन्द्रजी पर हमला करने को दौड़े।

अब श्रीरामचन्द्रजी पर राक्षस लोग तीरों की वर्षा करने लगे और श्रीरामचन्द्रजी भी अपने पैने पैने तीरों से उनके तीरों को काटने लगे। थोड़ी ही देर में श्रीरामचन्द्रजी ने उन सब राक्षसो को मार गिराया। जब सब राक्षस मर गये तब शूर्पणखा रोती हुई दौड़कर फिर खर के पास गई और चिल्लाकर कहने लगी कि हमारे नाक कान कटे सो कटे, पर तुम्हारे भी सब राक्षस मारे गये। हमको तो अब बड़ाही डर मालूम होता है। तुम हमारी रक्षा क्यों नहीं करते। हमारी समझ में तो तुम

रामचन्द्र के सामने खड़े भी नहीं रह सकते। वे तो अकेले ही सबको मार डालते हैं। अरे उनका छोटा भाई भी बड़ा बलवान् है। जब वे दोनों भाई मिलकर मारना शुरू करेंगे तब क्या ठीक रहेगा! जो तुम कुछ अपने को शूर-वीर समझते हो तो जल्द राम को मारो। पर तुमसे भी कुछ नहीं हो सकेगा। शूर्पणखा के वचन सुनकर खर ने कहा कि तुम्हारे ऐसा कहने से हमें बड़ी शर्म आती है, क्रोध भी होता है और हँसी भी आती है। हम तो रामचन्द्र को कुछ भी नहीं समझते। वे तो आज ही हमारे हाथ से मारे जायँगे। उनको तो तुम मरा ही समझो। हे बहन, हमारे शस्त्रों से कटे हुए रामचन्द्र का गर्म गर्म लोहू आज तुम पीओगी! यह कह कर खर ने अपनी बहुत सी सेना तैयार कराई और उसको साथ लेकर वह जनस्थान को चल दिया।

अब आती हुई राक्षसों की सेना को देखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से बोले—भाई, देखो राक्षसों के आगे कैसे बुरे बुरे शकुन दिखाई पड़ रहे हैं। देखो हमारी दहनी भुजा फड़क रही है। हमारी समझ में तो आज बड़ा भारी युद्ध होगा। हमारी जीत होगी और राक्षस मारे जायँगे। अब तुम सीताजी को ले जाकर पर्वत की गुफा में जा बैठो। देर न करो। यह तो हम जानते हैं कि इन सब राक्षसों को तुम अकेले ही मार सकते हो, पर हमारी यही इच्छा है कि इनको हम मारें।

शूर्पणखा के नाक कान कटे देखकर और खर दूषण आदि बड़े बड़े वीर राक्षसों का मरना सुनकर रावण को बड़ा ही क्रोध आया। सोच विचार कर वह मारीच राक्षस के पास पहुँचा और पहुँच कर बोला—हे मारीच, तुमने सुना ही होगा कि हमारे जनस्थान के सब राक्षसे दशरथ के बेटे रामचन्द्र ने मार दिये और हमारी बहन शूर्पणखा के नाक कान काट लिये हैं। इसका मुझे बहुत ही शोक है। हे मारीच, रामचन्द्र ने हमारे निरपराध वीरों को मारा है और हमारी बहन के नाक कान काटे हैं, इसलिए इसके बदले में, हम उनकी प्यारी स्त्री सीता को लेना चाहते हैं। इसमें तुम सहायता करो तो बड़ा काम हो। तुम एक काम करो कि एक सोने के खूबसूरत हिरन का रूप बना लो और सीता के सामने से निकल वन में दूर जा चरो। बस, सीता तुमको देखकर रामचन्द्र से तुम्हें पकड़ने को कहेगी। अब दोनों भाई तुमको पकड़ने के लिए दौड़ेंगे तब पीछे हम सीता को चुरा कर ले आवेंगे। बस, फिर रामचन्द्र सीता के वियोग में आप ही मर जायँगे।

इतनी सुनते ही मारीच का मुँह सूख गया। सासी जाती रही। आँखें खुली की खुली रह गईं। होठ चाटने लगा। मुँह पर मुर्दनी छा गई। विश्वामित्र के आश्रम की लड़ाई आँखों के सामने फिरने लगी। जी घबरा गया। थोड़ी देर बड़ी सावधानी से रावण से बोला—हे लंकेश, यह कौन सा तुम्हारा वैरी है जिसने तुमको

श्रीसीताजी के चुरा लाने की सलाह दी है ? क्या वह तुम्हारा पुराना वैरी है जो तुम्हारा नाश चाहता है ? ज़रूर वह तुम्हारा पूरा वैरी है जो तुम्हारे हाथ से ज़हरीले साँप के दाँत उखड़वाना चाहता है। हे रावण, तुमको यह किसने सलाह दी है ? पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी के छेड़ने को तुम्हें किसने उकसाया है ? तुम तो क्या, सारी दुनिया के राक्षस भी श्रीरामचन्द्रजी की बराबरी नहीं कर सकते। हे रावण, राक्षसों के लिए तो श्रीरामचन्द्रजी काल-रूप हैं। जो तुम अपना भला चाहते हो तो चुपके से लङ्का को लौट जाओ; श्रीसीताजी के चुराने का नाम न लो। हे रावण; कहीं तुम्हारे नाश के लिए ही तो श्रीसीताजी का जन्म नहीं हुआ ! अरे, तुमसे तो श्रीरामचन्द्रजी के पैने पैने तीर सहारे भी नहीं जायँगे। याद रखना, जो तुम श्रीसीताजी को चुरा भी लाये तो जिस समय श्रीरामचन्द्रजी के सामने आओगे, जीते न बचोगे।

इस प्रकार मारीच ने रावण को बहुत ही समझाया, परन्तु उस मूर्ख की समझ में काहे को आने लगा था। यहाँ तक कि रावण मारीच के समझाने से रुष्ट हो गया। तब मारीच ने विचारा कि जो मैं रावण का कहा न करूँगा तो यह दुष्ट मुझे मार डालेगा। इसलिए श्रीरामचन्द्रजी के ही हाथ से मौत हो तो अच्छा। यह विचार कर मारीच ने रावण से कहा कि अच्छा चलो, जो तुम्हारी इच्छा। हम तो मारे ही जायँगे, पर याद रखना, तुम भी नहीं बच सकोगे और सारी लङ्का ऊजड़ हो जायगी।

लाचार हो, मारीच रावण के साथ श्रीरामचन्द्रजी के पास चल दिया। वहाँ पहुँच कर वह बड़ा सुन्दर हिरन बन गया और श्रीरामचन्द्रजी की कुटी के पास घूमने लगा। उस समय मारीच ऐसा मनोहर मृग बना हुआ था कि उसको देख कर सबका जी ललचाता था। बड़ी सुघड़ाई से धीरे धीरे उछलता कूदता फिरता था। सुनहरे रूप में रुपहली टिकली बहुत ही भली मालूम देती थी। उसका मटक मटक कर हरी हरी घास चरना देखने वालों का मन हर लेता था। यहाँ तक कि वह श्रीसीताजी के पास पहुँच गया। अब कभी इधर कूद जाता है, कभी उधर। वह चाहता था कि किसी तरह श्रीसीताजी की नज़र मुझ पर पड़े। जब श्रीसीताजी ने उसे देख लिया तब वह हिरन और भी ज़ोर से वन में कूदने लगा। उसको देख कर श्रीसीताजी का मन ललचा तब वह श्रीरामचन्द्रजी से बोलीं,

प्रभु लछमनहि कहा समझाई ।
फिरत बिपिन निशिचर बहु भाई ॥
सीता केरि करहु रखवारी ।
बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी लछमणजी को सब तरह समझा कर हिरन के मारने के लिए चल दिये । अब मरने के डर से वह मारीच कभी दीखने लगता था और कभी छिप जाता था । कभी दूर निकल जाता था और कभी पास आ जाता था । श्रीरामचन्द्रजी उसके पीछे पीछे फिरते थे । जब दूर चले गये तब वह सोने का हिरन साधारण मृग का रूप बना कर फिरने लगा । निशाना जमा कर श्रीरामचन्द्रजी ने उसके एक बाण ऐसा मारा कि उसके पार हो गया । तीर के लगते ही मारीच ऊँचा उछल कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मरने से पहले उसने श्रीरामचन्द्रजी की बोली में "हा सीता ! हा लछमण !" बड़े ज़ोर से पुकारा । उस समय श्रीरामचन्द्रजी ने सोचा कि इस छलिया की आवाज़ को सुन कर सीताजी की बड़ी बुरी दशा होगी । लछमण तो चाहे सावधान रहें, पर वे भी सन्देह में तो ज़रूर पड़ ही जायँगे, पर सीताजी बहुत घबरायेंगी । यह बिचार करते करते श्रीरामचन्द्रजी अपनी कुटी की ओर चल दिये ।

उस मारीच ने, मरते समय, श्रीरामचन्द्रजी की आवाज़ में, जो "हा सीता ! हा लछमण !" कहा था, उसको सुन कर सीताजी के मन में बड़ी चिन्ता हुई । उन्होंने

लाचार हो, मारीच रावण के साथ श्रीरामचन्द्रजी के पास चल दिया। वहाँ पहुँच कर वह बड़ा सुन्दर हिरन बन गया और श्रीरामचन्द्रजी की कुटी के पास घूमने लगा। उस समय मारीच ऐसा मनोहर मृग बना हुआ था कि उसको देख कर सबका जी ललचाता था। बड़ी सुन्दराई से हौले हौले उछलता कूदता फिरता था। सुनहरे रूप में रुपहली टिकली बहुत ही भली मालूम देती थी। उसका मटक मटक कर हरी हरी घास चरना देखने वालों का मन हर लेता था। यहाँ तक कि वह श्रीसीताजी के पास पहुँच गया। अब कभी इधर कूद आता है, कभी उधर। वह चाहता था कि किसी तरह श्रीसीताजी की नजर मुझ पर पड़े। जब श्रीसीताजी ने उसे देख लिया तब वह हिरन और भी ज़ोर से बन में कूदने फाँदने लगा। उसको देख कर श्रीसीताजी का मन ललचा गया। तब वह श्रीरामचन्द्रजी से बोलीं—

सुनहु देव रघुवीर कृपाला।
इहि मृग कर अति सुन्दर छाला॥
सत्यसिन्धु प्रभु बध कर एही।
आनहु चर्म कहति बैदेही॥
तब रघुपति जाना सब कारन।
उठे हर्षि सुर-काज सँवारन॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा।
करतल चाप रुचिर शर साँधा।

ऐसे वचन न कहने चाहिए । हम किसी तरह भी तुमको अकेली छोड़ कर नहीं जायँगे । तुम शोक को दूर कर धीरज से बैठी रहो । अभी राक्षस को मार कर श्रीरामचन्द्रजी आते होंगे । यह आवाज़ उनकी नहीं है, वरन् राक्षस की है । इसलिए तुम घबराओ मत । देखो, जब से खर मारा गया है तब से राक्षसों का और हमारा पूरा वैर हो गया है, इसलिए हम तुम्हें अकेली कैसे छोड़ दें? यह सुन कर सीताजी क्रोध में लाल आँखें करके बोलीं—अरे नीच, तुम राक्षसों की रक्षा चाहते हो । बड़े निर्लज्ज हो । रामचन्द्रजी को दुखी देख कर तुमको कुछ भी तरस नहीं आता । हे लक्ष्मण, हमने तुमको अब जाना । तुम्हारे कुटिल स्वभाव को हमने अब पहचाना । तुम्हारा तो बड़ा खोटा स्वभाव है । तुम ज़रूर कैकेयी से सलाह करके आये हो । पर तुम्हारी इच्छा पूरी न होगी । हम तो अपने स्वामी के सिवा किसी पुरुष को स्वप्न में भी नहीं चाहतीं । तुम्हारे देखते ही देखते हम अपने प्राण छोड़ देंगी । हे लक्ष्मण, बिना श्रीरामचन्द्रजी के हम गोदावरी में डूब जायँगी, विष खा लेंगी, या आग में जलकर मर जायँगी, या अपने को फाँसी दे लेवेंगी, पर उनको छोड़ हम किसी दूसरे पुरुष को नहीं छुएँगी । तब लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़ कर कहा कि आप हमारी माता हैं, इसलिए हम जवाब नहीं दे सकते । तुम्हारा ऐसा कहना कुछ नई बात नहीं है, क्योंकि हो तो स्त्री ही । स्त्रियों के स्वभाव ही ऐसे होते हैं कि वे बिना विचारे ही जो मन में आता है कह बैठती हैं ।

कि श्रीरामचन्द्रजी राक्षसों के फन्दे में फँस गये हैं। इस लिए संकट पड़ने पर हमको याद किया है। इस तरह सीताजी के मन में तरह तरह के विचार उठने लगे। वे लक्ष्मण से बोलीं—हे लक्ष्मण जाकर देखो तो तुम्हारे भाई कैसे हैं। इस समय हमारा कलेजा धड़क रहा है। हम बहुत बेचैन हैं। क्योंकि ये दुःख के वचन तुम्हारे भाई के मुँह से निकले हैं। तुम उनकी रक्षा के लिए उनके पास जाओ। लक्ष्मणजी ने कहा कि मुझे रामचन्द्रजी ने यह आज्ञा नहीं दी है कि तुमको अकेली छोड़ूँ। इसलिए मैं नहीं जा सकता। इतना सुन कर सीताजी को बड़ा क्रोध आया और बोलीं—हे लक्ष्मण, बड़े शोक की बात है कि तुम अपने भाई के प्यारे बन कर भी विपत्ति में उनकी सहायता नहीं करते। तुम उनके भ्राता नहीं वरन् घातक हो, जो ऐसे समय में भी उनके पास नहीं जाते। क्या तुम यह चाहते हो कि रामचन्द्र मारे जायँ और सीता को हम अपने वश में करलें। जरूर तुम्हारे मन में पाप बसा हुआ है। हमारे ही लालच से तुम उनके पास नहीं जाते। अरे! तुमको श्रीरामचन्द्रजी से कुछ भी प्रेम नहीं। हाय! अब हम अकेली क्या करें। इस प्रकार कहती कहती सीताजी रोने लगीं।

उस समय लक्ष्मणजी ने सीताजी को बहुत समझाया और कहा कि हे वैदेहि! राक्षस की तो क्या किसी देवता की भी शक्ति नहीं कि श्रीरामचन्द्रजी को दुःख दे सके, मारना तो अलग रहा। इस कारण तुमको अपने मुँह से

ऐसे वचन न कहने चाहिए। हम किसी तरह भी तुमको अकेली छोड़ कर नहीं जायँगे। तुम शोक को दूर कर धीरज से बैठी रहो। अभी राक्षस को मार कर श्रीराम चन्द्रजी आते होंगे। यह आवाज़ उनकी नहीं है, वरन् राक्षस की है। इसलिए तुम घबराओ मत। देखो, जब से खर मारा गया है तब से राक्षसों का और हमारा पूरा बैर हो गया है, इसलिए हम तुम्हें अकेली कैसे छोड़ दें? यह सुन कर सीताजी क्रोध में लाल आँखें करके बोलीं—अरे नीच, तुम राक्षसों की रक्षा चाहते हो। बड़े निर्लज्ज हो। रामचन्द्रजी को दुखी देख कर तुमको कुछ भी तरस नहीं आता। हे लक्ष्मण, हमने तुमको अब जाना। तुम्हारे कुटिल स्वभाव को हमने अब पहचाना। तुम्हारा तो बड़ा खोटा स्वभाव है। तुम ज़रूर कैकेयी से सलाह करके आये हो। पर तुम्हारी इच्छा पूरी न होगी। हम तो अपने स्वामी के सिवा किसी पुरुष को स्वप्न में भी नहीं चाहतीं। तुम्हारे देखते ही देखते हम अपने प्राण छोड़ देंगी। हे लक्ष्मण, बिना श्रीरामचन्द्रजी के हम गोदावरी में डूब जायँगी, विष खा लेंगी, या आग में जलकर मर जायँगी, या अपने को फाँसी दे लेवेंगी, पर उनको छोड़ हम किसी दूसरे पुरुष को नहीं छुएँगी। तब लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़ कर कहा कि आप हमारी माता हैं, इसलिए हम जवाब नहीं दे सकते। तुम्हारा ऐसा कहना कुछ नई बात नहीं है, क्योंकि हो तो स्त्री ही। स्त्रियों के स्वभाव ही ऐसे होते हैं कि वे बिना विचारे ही जो मन में आता है कह बैठती हैं।

ये तुम्हारे कठोर वचन हमारे हृदय में तीर से लगते हैं। और हमारी इच्छा तो यही थी कि तुमको अकेली छोड़ कर कहीं न जायँ, पर अब हमसे तुम्हारे वचन नहीं सह जाते। हम तो श्रीरामचन्द्रजी के पास जाते हैं, पर तुम्हारा कल्याण हो। इस समय हमको बड़े बुरे शकुन दिखाई दे रहे हैं। परमात्मा करे कि हम दोनों भाई आकर तुमको यहाँ राज़ी ख़ुशी देखें।

लक्ष्मणजी ने सीताजी को बहुत कुछ समझाया, परन्तु उन्होंने एक भी न मानी। लाचार लक्ष्मणजी को भी क्रोध आ गया। वे श्रीरामचन्द्रजी की खोज में चल दिये। उधर रावण तो ताक में लगा ही हुआ था। बस, सीताजी को कुटी में अकेली देख संन्यासी साधु का वेष बनाकर वह उनके पास आया और उनकी बड़ाई करके कहने लगा कि हे देवि, तुम कौन हो? यहाँ किस लिये आई हो? वह पुरुष बड़ा भाग्यवान् है जिसको तुम मिली हो। तुम किस की स्त्री हो? तुम यहाँ रहने लायक नहीं हो। सीताजी ने सच्चा साधु समझ कर उसके बैठने को आसन दिया और फलमूल खाने को दिये। फिर सीताजी ने अपना सब ब्यौरेवार पता बता दिया। रावण ने सोचा कि अब देर नहीं करनी चाहिए। राम लक्ष्मण के आने से पहले ही सीता को ले चलना चाहिए। यह विचार कर बोला—तुम्हारा तो सब पता हमने जान लिया। अब हमारा हाल सुनो। देखो, जिसके डर से देवता, असुर, और मनुष्य सदा काँपते रहते हैं हम वही राक्षसों

के राजा रावण हैं। अब हम तुमको लङ्का में ले जायँगे और तुम को अपनी पटरानी बनावेंगे। वहाँ सुख से रहना और अच्छे अच्छे गहने कपड़े पहनना।

अब तो इतना सुनतेही सीताजी की देह में आग लग गई। वे बड़े क्रोध में होकर बोलीं—रे नीच, हम महाराज श्रीरामचन्द्रजी की पतिव्रता स्त्री हैं भला सिंह की स्त्री को तुम गीदड़ कैसे ले जाओगे। क्या तुम्हारा काल निकट आ पहुँचा! अरे जैसे सूर्य्य की प्रभा को कोई नहीं छू सकता वसेही तुम भी हमको नहीं छू सकते। अरे! तुम सिंह के मुँह से मृग और विषधर सप के मुँह से दाँत निकालने की इच्छा करते हो। अरे तुम पहाड़ को फूँक से उड़ाना चाहते हो। अरे तुम तो सुई से आँख खुजाते हो, जो हमें कुदृष्टि से देखते हो। अरे तुम तो गले में पत्थर बाँध कर समुद्र उतरा चाहते हो जितना भेद सिंह और गीदड़ में, समुद्र और पोखर में, सोने और लोहे में, चन्दन और धतूरे में, हंस और गिद्ध में और अमृत और विष में है उतना ही श्रीरामचन्द्रजी में और तुम में है। अरे मूर्ख! जब तक श्रीरामचन्द्रजी धनुष बाण लिये इस पृथ्वी पर हैं तब तक हमको कोई नहीं ले जा सकता। इतना कह कर सीताजी डर के मारे काँपने लगीं। सीताजी के ऐसे वचन सुन कर रावण को भी बड़ा क्रोध आया और बोला—हे सीते, हम कुबेर के सौतेले भाई हैं। रावण हमारा नाम है। हमारे भाई और बेटे बड़े बलवान् हैं। हमारे बल का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। औरों

क्या गिनती, देवता भी हमारे डर से काँपते हैं। जब हमने युद्ध में खड़े होकर अपने भाई कुबेर को भी जीत लिया और उसको लङ्का से निकाल दिया और उसका पुष्पक विमान भी हमने छीन लिया तब औरों की क्या गिनती! जब कभी हम क्रोध करते हैं तब इन्द्र भी सामने नहीं पड़ता। जहाँ हम बैठते हैं वहाँ पवन भी डर कर मन्द मन्द चलता है। हमारी लङ्कापुरी इन्द्रपुरी से भी बढ़ी है। वहाँ सोने के महल और समुद्र की खाई है। जब तुम हमारे साथ हमारे पुष्पित बगीचों में विचरोगी तब तुम रामचन्द्र को बिल्कुल भूल जाओगी। अब तुम हमको पति बनाओ और नाहीं मत करो। रामचन्द्र तो हमारी एक उँगली के बराबर भी नहीं है।

यह सुनकर सीता ने कहा—बड़े शोक की बात है कि कुबेर के भाई होकर तुम पराई स्त्री पर मन चलाते हो। जो तुम ऐसा चाहते हो तो ज़रूर सब राक्षसों का नाश हो जायगा और तुम्हारी लङ्कापुरी भी उजाड़ हो जायगी। अरे मूर्ख! इन्द्र की स्त्री इन्द्राणी को चुराने वाला चाहे बच जाय, पर श्रीरामचन्द्रजी की स्त्री को चुराने वाला नहीं बच सकता। श्रीरामचन्द्रजी की स्त्री को ज़बरदस्ती से चुराने वाला तो अमृत पीकर भी जीता नहीं रह सकता। इतना सुन कर रावण क्रोध में भर और अपना शरीर बढ़ा कर बोला—हे जानकी! देखो हम कितने बड़े डील-डौल के हैं। देखो हम आकाश में खड़े हो सारी पृथ्वी को उठा सकते और समुद्र पी सकते हैं।

हम अपने बाणों से सूर्य्य के टुकड़े टुकड़े कर सकते हैं। हम मृत्यु को भी मार सकते हैं। हे सीता, जो तुम सारे संसार में उत्तम पति चाहती हो तो हमारे साथ चल लङ्का में बसो।

रावण की यह दशा देख सीताजी मूर्छित हो गई और रावण ने बायें हाथ से सिर और दाहिने हाथ से पैर पकड़ सीताजी को रथ में डाल लिया। जब सीताजी की मूर्छा जागी तब "हा राम! हा राम!" कह कह रोने लगीं। रावण ने रथ भगा दिया। फिर सीताजी विलाप करने लगीं—

"हा जगदीश! देव! रघुराया।
केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरतहरण! शरण! सुखदायक!।
हा! रघुकुलसरोज दिन-नायक!॥
हा! लषमण तुम्हार नहिं दोषा।
सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोषा॥
कैकेई मन जो कछु रहेऊ।
सो विधि आजु मोहिं दुख दयेऊ॥
पंचवटी के खग मृग जाती।
दुखी भये सनचर बहु भाँती॥
विविध विलाप करत वैदेही।
भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥

कह सुनाया । हनुमान्‌जी ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा कि "महाराज ! आप सुग्रीव से मित्रता कर लीजिए तो वह सीताजी के ढूँढ़ने के लिए बहुत से बन्दर इधर उधर भेज देंगे । इस तरह बहुत जल्द सीताजी का पता लग जायगा । और आप बाली को मारकर सुग्रीव की स्त्री को दिला दीजिए । इस तरह दोनों का काम हो जायगा"। हनुमान्‌जी के ऐसे बुद्धिमानी के वचन सुनकर श्रीराम चन्द्रजी के भी जी में आ गया कि इस समय सुग्रीव से ज़रूर मित्रता कर लेनी चाहिए ।

बस अब हनुमान्‌जी दोनों भाइयों को सुग्रीव के पास ले गये और दोनों की मित्रता करा दी । श्रीरामचन्द्रजी ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि "मैं बाली को मार कर सुग्रीव को उसकी स्त्री और किष्किन्धा का राज दिला दूँगा"। और सुग्रीव ने भी प्रतिज्ञा कर ली कि "मैं अपनी सेना को चारों ओर भेजकर सीताजी की ख़बर मँगा दूँगा"। इस तरह जब दोनों की प्रतिज्ञा हो गई तब सुग्रीव को कुछ सन्देह हुआ कि ये दोनों भाई तो देखने में बहुत ही छोटे हैं और बाली महाबली है । उसको ये कैसे मारेंगे ? यह विचार कर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी से बोला कि "महाराज ! जब तक आपका बल पौरुष मैं अपनी आँखों से न देख लूँ तब तक मुझे कैसे विश्वास हो कि आप बाली को मार सकेंगे ? क्योंकि मैं बाली के बल को अच्छी तरह जानता हूँ । वह बड़ा बली है"। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि "जिस तरह तुमको विश्वास हो वैसा करो"।

तब सुग्रीव ने श्रीरामचन्द्रजी को ताल के सात पेड़ दिखलाये। ये पेड़ चक्करदार गोल बाँधे पृथ्वी पर खड़े थे। सुग्रीव ने कहा कि यदि आप इन पेड़ों को अपने बाण से बींध दें तो मुझे भरोसा हो जायगा कि आप बाली को मार सकेंगे। श्रीरामचन्द्रजी ने एक ही बाण से उन सात ताल के पेड़ों को एक बार में ही बींध दिया। तब श्रीरामचन्द्रजी का बाण उन तालों को पार कर फिर उनके तरकस में आ गया तब सुग्रीव को बड़ा आनन्द हुआ और बाली के मारने का पक्का भरोसा हो गया।

अब श्रीरामचन्द्रजी के कहने से सुग्रीव बाली से लड़ने के लिए किष्किन्धा पुरी को गया और जाकर बाली के दरवाज़े पर लगा बड़े ज़ोर से गर्जने और किलकारी मारने। जब इसके गर्जने की आवाज़ बाली के कानों में पड़ी तब बाली को बड़ा क्रोध आया। वह मन में कहने लगा कि यह तो बहुत दिक करता है। कई बार मैंने इसे युद्ध में हराया है पर तो भी इसको बिना लड़े कल नहीं पड़ती। अब की मैं फिर के लिए कुछ झगड़ा बाक़ी नहीं छोड़ूँगा। अबकी बार इसका काम ही तमाम कर दूँगा। यह सोच कर बाली अपनी गदा उठा कर कूदता हुआ सुग्रीव के पास आया और बड़े ज़ोर से बोला कि अब की बार सावधान होकर लड़ना। देखो, अब तुमको मैं जीता नहीं छोड़ूँगा। इस तरह कहते सुनते दोनों लड़ाई के मैदान में पहुँच गये। लड़ाई होने लगी।

श्रीरामचन्द्रजी बाली के मारने के लिए पहले ही से एक वृक्ष की ओट में खड़े थे। वृक्ष की ओट में खड़े होने का कारण यह था कि बाली को यह वरदान मिला हुआ था कि "जो तुम्हारे सामने तुमसे युद्ध करने को कोई आवेगा उसका आधा बल तुममें आ जायगा" इसीलिए जब जब सुग्रीव बाली के लड़ने के लिए उसके सामने जाता था, तब तब उसका आधा बल बाली में चला जाता था और इसी लिए बार बार सुग्रीव की हार होती थी। इस वरदान का सब भेद सुग्रीव ने श्रीरामचन्द्रजी से पहले ही कह दिया था। इसीलिए श्रीरामचन्द्रजी वृक्ष की आड़ में खड़े खड़े बाली के मारने का दाँव देख रहे थे।

पुनि नाना विधि भई लराई।
विटप ओट देखहिं रघुराई॥
बहु छल बल सुग्रीव कर, हृदय हारि भय मान।
मारा बालिहि राम तब, हिये माँझ शर तान॥

बाली को मारकर श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। सुग्रीव को किष्किन्धापुरी का राजा और बाली के पुत्र अङ्गद को वहाँ का छोटा राजा बना दिया। अब सुग्रीव अपनी स्त्री और राज्य को पाकर आनन्द में रहने लगा। वर्षा ऋतु आ जाने से राम और लक्ष्मण भी वहीं, जङ्गल में, एक गुफा में रहने लगे। वर्षा के बीत जाने पर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा—

वर्षा गत निर्मल ऋतु आई।
सुधि न तात! सीता की पाई॥

एक बार कैसेहु सुधि पावौं ।
कालहु जीति निमिष महँ ल्यावौं ॥
कतहुँ रहै जो जीवत होई ।
तात यतन करि आनौं सोई ॥
सुग्रीवहि सुधि मोरि बिसारी ।
पावा राज्य कोष पुर नारी ॥
जेहि सायक मैं मारा बाली ।
तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली ॥

अब श्रीरामचन्द्रजी के ऐसे वचन सुन कर लक्ष्मणजी को बड़ा क्रोध आया। श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी का क्रोध शान्त करके उनसे कह दिया कि "भाई, क्रोध का समय नहीं है"।

"भय दिखाय लै आवहु, तात सखा सुग्रीव"।

इधर श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी सुग्रीव के बुलाने के लिए किष्किन्धा पुरी को चल दिये। उधर हनुमान्‌जी को यह सोच हुआ कि राजा सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये। यह अच्छा नहीं हुआ। तब हनुमान्‌जी झट सुग्रीव के पास गये और सीताजी के ढुँढवाने की बात याद दिलाई। अब तो सुग्रीव को अपनी प्रतिज्ञा के भूल जाने पर बड़ा पछतावा आया और वह मन में बहुत डरा कि कहीं श्रीरामचन्द्रजी मुझ पर क्रुद्ध न हो जायँ। यह विचार कर सुग्रीव ने अपने मन्त्री हनुमान्‌जी को आज्ञा दी कि बहुत से बन्दरों को जहाँ तहाँ सीताजी की सुधि लेने को भेजो और कह दो कि जो पन्द्रह

दिन के भीतर लौट कर न आयेगा वह हमारे हाथ से मारा जायगा। हनुमानजी ने जहाँ तहाँ तुरन्त बन्दर भेज दिये। इतने ही में लक्ष्मणजी भी आ पहुँचे। उस समय लक्ष्मणजी की आँखें क्रोध में लाल हो रही थीं। लक्ष्मणजी को देखते ही सुग्रीव के होश उड़ गये। जैसे तैसे हनुमानजी ने इनका क्रोध शान्त किया और सुग्रीव, अङ्गद और हनुमान् आदि अनेक बन्दर तुरन्त लक्ष्मणजी के साथ रामचन्द्रजी के पास आये। सुग्रीव ने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजी से अपनी भूल की क्षमा माँगी। श्रीरामचन्द्रजी बड़े शान्त-स्वभाव थे। सुग्रीव से बोले—

तब रघुपति बोले मुसकाई।
तुम प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई॥
अब सोइ जतन करहु मन लाई।
जेहि बिधि सीता की सुधि पाई॥

अब सुग्रीव ने बहुत जल्द अपने बन्दरों को बुलाकर उनसे कह दिया कि—

जनकसुता कहँ खोजहु जाई।
मास दिवस महँ आयहु भाई॥
अवधि मेटि जो बिन सुधि पाये।
अवशि मरिहि सो मम कर आये॥

अपने स्वामी की आज्ञा पाते ही सब बन्दर सीताजी की खोज करने के लिए जहाँ तहाँ चले गये। अब सुग्रीव ने अङ्गद, हनुमान्, नल, नील और जाम्बवान् आदि महा बुद्धिमान् और महाबलवान् कुछ बन्दरों को बुलाया और

उनको दक्षिण दिशा में जाने की आज्ञा दी। जब वे चलने को हुए तब श्रीरामचन्द्रजी ने उन सब में बुद्धिमान् हनुमान्जी को अपने हाथ की एक अँगूठी (जिस पर "राम" नाम खुदा हुआ था) देकर कहा कि जब तुम्हें कहीं सीता जी मिलें तब इस अँगूठी को हमारी पहिचान के लिए उनको दे देना। हनुमान् जी अँगूठी को लेकर और मन में प्रसन्न होकर अङ्गद आदि के साथ दक्षिण दिशा को चल दिये।

इस तरह सीताजी की खोज में फिरते फिराते दक्षिणी समुद्र का किनारा आ गया। यहाँ पहुँच कर इनको बहुत संदेह हुआ और सोचने लगे कि राजा सुग्रीव ने हमको सीताजी की सुधि लाने के लिए एक महीने का समय दिया था; उसके पूरा होने में अब थोड़े ही दिन बाक़ी रहे हैं। सीताजी का कुछ पता नहीं मिलता कि कहाँ हैं। जो उनका बिना पता लगाये हम लोग लौट जायँ तो राजा हमको मार डालेगा।

जब ये समुद्र के किनारे इस तरह नाना प्रकार के सोच कर रहे थे तब यहाँ इनकी जटायु के भाई वृद्ध सपाति से भेंट हुई। संपाति ने इनको धीरज दिलाकर समझा दिया कि घबराओ मत, सीताजी जीती जागती हैं। इसी समुद्र के परले किनारे पर लङ्का नाम की एक राक्षसों की पुरी है। वहाँ का राजा बड़ा बली है। रावण उसका नाम है। सीताजी को वही चुरा कर ले गया है। इस समय सीताजी अशोकवाटिका में रहती हैं। जो इस

समुद्र के पार जा सकेगा वही सीता जी की खबर लावेगा। इतना कह कर वह संपाति तो चला गया। अब आपस में समुद्र के पार जाने का विचार करने लगे। समुद्र फाँदने के लिए किसी की हिम्मत न पड़ी। सब चुपके होगये। पर अङ्गद ने कहा कि मैं समुद्र को कूद तो जाऊँगा पर मुझे लौटने में संदेह है। इस तरह जब किसी की हिम्मत समुद्र कूदने की न देखी तब जाम्बवान् ने हनुमान्जी को उनका बल याद दिलाया तो हनुमान्जी भी अपने बल को याद करके जोश में भर गये। इन्होंने उस समय अपना शरीर इतना बढ़ाया कि देखने में ऐसे मालूम होते थे जैसे कोई पर्वत हो। हनुमान् जी ने फाँदते समय जाम्बवान् से कहा—

> जाम्बवंत मैं पूछौं तोहीं।
> उचित सिखावन दीजै मोही॥

जाम्बवान् ने कहा

> इतना करहु तात तुम जाई।
> सीतहिं देख कहौ सुधि आई॥

भवभेषज रघुनाथ यश, सुनै जो नर अरु नारि।
तिन कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहि त्रिपुरारि॥

सुन्दर-काण्ड

इस काण्ड में—हनुमान्‌जी का समुद्र को लाँघना, लङ्का में पहुँच कर विभीषण और हनुमान् का संवाद, जानकी से हनुमान् की बातचीत, अशोकवाटिका का विध्वंस, राक्षसों से युद्ध, रावण-हनुमान् का संवाद, लङ्का-दहन रामचन्द्रजी को सीता का समाचार सुनाना, युद्धार्थ सेना का प्रस्थान, इत्यादि बातों का वर्णन है।

इस प्रकार ज्योंही हनुमान्‌जी, रामचन्द्रजी को याद करके समुद्र के उत्तरी किनारे के एक पर्वत पर चढ़ कर समुद्र के पार जाने के लिए, बड़े ज़ोर से ऊपर को उड़े, त्योंही वह पर्वत उनके बोझ से पृथ्वी के भीतर धँस गया। वे इतने वेग से उड़े कि कितने ही वृक्ष उनके पीछे पीछे दूर तक उड़े हुए चले गये। जिस समय महावीर हनुमान् पवन के समान आकाश में उड़े हुए जा रहे थे उस समय रास्ते में उनको कई बड़ी बड़ी

कर बड़ा आनन्द हुआ। हनुमान् ने अपना लङ्का में आने का कुल हाल कह सुनाया। फिर विभीषण ने हनुमान् को सीताजी के रहने का सब पता बता दिया।

अब हनुमान् विभीषण से विदा होकर, सीताजी के दर्शन के लिए अशोकवाटिका को चल दिये। वहाँ राक्षसियों के बीच में सीताजी को बैठी हुई देख कर हनुमान् ने उनको अपने मन ही मन में प्रणाम किया। उस समय सीताजी का शरीर दुबला हो रहा था। वे रात-दिन श्रीरामचन्द्रजी को ही याद किया करती थीं। इस समय भी वे श्रीरामचन्द्रजी को याद कर रही थीं। ऐसी दुबली पतली और दीन सीताजी को देखकर हनुमान् को बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगे कि सीताजी का पता तो लग गया, पर अब करना क्या चाहिए?

इतने ही में हनुमान् ने क्या देखा कि बहुत सी स्त्रियों को साथ लिये हुए रावण सीताजी की ओर आ रहा है। हनुमान् भी झट रावण को आता देख, एक वृक्ष पर चढ़ कर पत्तों में छिप कर बैठ गये। उसी अशोक वृक्ष के नीचे सीता जी बैठी थीं।

रावण ने आकर सीताजी को बहुत फुसलाना चाहा, पर वे काहे को उस अधर्मी की बातों में आने वाली थीं। रावण ने उनको लोभ से, क्रोध से, डर से, सभी तरह से समझाया, पर वे बराबर यही कहती रहीं कि चाहे प्राण ही प्राण क्यों न चले जायँ, पर हम धर्म को कभी न छोड़ेंगी।

जब रावण सब कुछ करके हार गया तब उसने राक्षसियों को हुक्म दिया कि देखो, सीता को समझाओ और कह दो कि जो आज से एक महीने के भीतर भीतर हमारा कहना न मानेगी तो हम उसको ज़रूर मार डालेंगे। इतना कह कर रावण अपने महल को चला गया।

रावण के जाते ही सब राक्षसी तरह तरह की विकट और डरावनी सूरत बना बना कर सीताजी को डराने लगीं। उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी कुछ समझदार थी। वह औरों की तरह खोटे स्वभाव की न थी। वह सब राक्षसियों को बुलाकर कहने लगी कि बहनो! अब तुम सीताजी को मत डराओ। जो तुम अपना भला चाहती हो तो इनकी टहल करो। इनसे क्षमा माँगो। मैंने आज रात को एक बड़ा बुरा सपना देखा है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि अब रावण का जल्द नाश होगा और सीताजी को श्रीरामचन्द्रजी ले जायँगे।

सीताजी के मन में रावण की बात याद करके बड़ा दुःख हो रहा था। वे सोच रही थीं कि—

मास दिवस बीते मोहि मारिहि निशिचर पोच।

इस तरह सीताजी बहुत दुःखी होकर त्रिजटा से हाथ जोड़ कर बोलीं कि हे माता, अब मुझसे विरह का दुःख सहा नहीं जाता। तुम लकड़ी लाकर चिता बना दो तो मैं उसमें बैठ जाऊँ। तुम उसमें आग लगा देना। यह सुन कर त्रिजटा ने सीताजी को बहुत समझाया और कहा कि मैं अब रात में आग कहाँ से लाऊँ।

कर बड़ा आनन्द हुआ। हनुमान् ने अपना लङ्का में आने का कुल हाल कह सुनाया। फिर विभीषण ने हनुमान् को सीताजी के रहने का सब पता बता दिया।

अब हनुमान् विभीषण से विदा होकर, सीताजी के दर्शन के लिए अशोकवाटिका को चल दिये। वहाँ राक्षसियों के बीच में सीताजी को बैठी हुई देख कर हनुमान् ने उनको अपने मन ही मन में प्रणाम किया। उस समय सीताजी का शरीर दुबला हो रहा था। वे रात-दिन श्रीरामचन्द्रजी को ही याद किया करती थीं। इस समय भी वे श्रीरामचन्द्रजी को याद कर रही थीं। ऐसी दुबली पतली और दीन सीताजी को देखकर हनुमान् को बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगे कि सीताजी का पता तो लग गया, पर अब करना क्या चाहिए?

इतने ही में हनुमान् ने क्या देखा कि बहुत सी स्त्रियों को साथ लिये हुए रावण सीताजी की ओर आ रहा है। हनुमान् भी झट रावण को आता देख, एक वृक्ष पर चढ़ कर पत्तों में छिप कर बैठ गये। उसी अशोक वृक्ष के नीचे सीता जी बैठी थी।

रावण ने आकर सीताजी को बहुत फुसलाना चाहा, पर वे काहे को उस अधर्मी की बातों में आने वाली थीं। रावण ने उनको लोभ से, क्रोध से, डर से, सभी तरह से समझाया, पर वे बराबर यही कहती रहीं कि चाहे आज ही प्राण क्यों न चले जायँ, पर हम धर्म को कभी न छोड़ेंगी।

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा।
जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामणि उतार तब दीन्हा।
हर्ष समेत पवनसुत लीन्हा॥

फिर सीताजी ने कहा—

कहेउ तात ! अस मोर प्रणामा।
सब प्रकार प्रभु पूरण कामा॥
दीनदयाल बिरद सँभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी॥
मास दिवस महँ नाथ न आवहिँ।
तौ पुनि मोहिँ जियत नहिँ पावहिँ॥
तुमहि देखि शीतल भइ छाती।
पुनि मोकहँ सोइ दिन सोइ राती।

जनकसुतहि समुझाय करि, बहुविधि धीरज दीन्ह।
चरणकमल सिर नाइ करि, गमन राम पहँ कीन्ह॥

सीताजी से विदा होकर हनुमान् समुद्र को लाँघ कर जहाँ अङ्गद आदि बन्दर इनकी बाट में बैठे थे वहाँ आ पहुँचे। इन्होंने उनसे सीताजी के दर्शन और लङ्का जलाने का सब हाल कहा। सबके सब बड़े प्रसन्न हुए। सबने हनुमान्‌जी की बहुत बड़ाई की।

अब हनुमान्‌जी सब बन्दरों को साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी के पास पहुँचे। दूर ही से श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जी को प्रसन्न-चित्त देख कर मनमें बड़े प्रसन्न हुए।

समझा। फिर रावण ने यह समझ कर कि बन्दरों को अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है, उनकी पूँछ में आग लगाने की आज्ञा दे दी। राक्षसों ने उनकी पूँछ पर बहुत से कपड़े लपेटे। जब वे कपड़ा लपेट चुके तब इनकी पूँछ में आग लगा दी गई। अब हनुमान्‌जी ने अपनी जलती हुई पूँछ को उठा कर चारों ओर को घुमाया तो जितने राक्षस उस समय दरबार में बैठे थे उन सबके कपड़े जल गये और अपनी दाढ़ी-मूँछों की आग बुझाते हुए जहाँ तहाँ को भागने लगे। कोई इधर गया कोई उधर। जहाँ जिसे मौक़ा मिला वह वहीं भाग निकला।

अब हनुमान्‌जी भी उस मशाल सी जलती हुई पूँछ को उठाये हुए लगे सारी लङ्का में फिरने। जिधर वे जाते थे उधर ही हाहाकार मच जाता था। यहाँ तक कि इन्होंने विभीषण के घर और अशोकवाटिका को छोड़ कर सारी लङ्का के बड़े बड़े सजे हुए सब मकान जला दिये। अब किसी राक्षस की ताक़त नहीं कि इनको पकड़े।

इस तरह लङ्का जलाकर इन्होंने झट समुद्र के किनारे जाकर उसमें अपनी पूँछ बुझाई। पूँछ में आग लगने से इनको कुछ तकलीफ़ नहीं हुई।

पूँछ बुझाने के बाद फिर हनुमान् सीताजी के पास आये। हाथ जोड़ कर प्रणाम करके उनके सामने खड़े होकर हनुमान्‌जी कहने लगे—

लंका-(युद्ध)-काण्ड

इस काण्ड में—समुद्र का पुल बाँधना, लङ्का पर चढ़ाई, मेघनाद-युद्ध, और उसका वध, कुम्भकर्ण-वध, राक्षसों का घोर युद्ध, रावण का वध, विभीषण को लङ्का का राज्यतिलक, सीतामिलाप, पुष्पक-विमान में बैठ कर अयोध्या को लौटना, इत्यादि बातों का वर्णन है।

अब नल और नील आदि बन्दरों ने बहुत जल्द समुद्र का पुल बना दिया और सब उस पुल पर हो कर पार पहुँच गये। लङ्का के पास ही इनकी सारी सेना आ टिकी। खुशी के मारे बन्दर वृक्षों पर चढ़ चढ़ कर उनको खूब हिलाते थे। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर खूब कूद फाँद करते थे। बन्दरों की बहुत बड़ी सेना के शोर गुल को सुन कर राक्षसों ने रावण के पास खबर कर दी कि श्रीराम चन्द्रजी बहुत से बलवान् बन्दरों की सेना लेकर लङ्का पर चढ़ाई करने को आ पहुँचे हैं।

श्रीरामचन्द्रजी ने प्रतिज्ञा कर ली कि हम दुष्ट रावण को मार कर लङ्का का राज तुमको देंगे।

सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुणगान।
सादर सुनहिं, ते तरहिं, भव-सिंधु बिना जलयान॥

यह मेघनाद ऐसा वैसा वीर था। वह बड़ा ही भयङ्कर लड़ने वाला था। उसमें बल भी अतोल था। उसने अपने पैने बाणों से बहुत से बन्दरों को मार गिराया।

जब लक्ष्मणजी ने देखा कि हमारे बहुत से बन्दर उसने मार दिये, तब उनको बड़ा क्रोध आया। मारे गुस्से के उनकी आँखें लाल हो गई। होठ फड़फड़ाने लगे। सावधान होकर धनुष की टंकार से सब दिशाओं को गुञ्जारते हुए मेघनाद की ओर आये। मेघनाद भी यह कहता हुआ इनकी ओर आ रहा था कि—

कहँ कोशलाधीश दोउ भ्राता।
धन्वी सकल लोक विख्याता॥
कहँ नल,नील,द्विविद,सुग्रीवा।
कहँ अङ्गद हनुमत बल सींवा॥
कहाँ विभीषण भ्राता-द्रोही।
आजु शठहि हठि मारउँ ओही॥

अब लक्ष्मण और मेघनाद की लड़ाई होने लगी। दोनों ही बड़े वीर थे। मेघनाद के पैने तीरों ने लक्ष्मण का शरीर बींध दिया। इनका सारा शरीर लोहुलुहान हो गया। क्रोध में भर कर इन्होंने भी मेघनाद को मारना शुरू किया। मेघनाद भी इतना विकल हो गया कि उसे अपने तन की भी सुध बुध न रही। अब लक्ष्मण ने मेघनाद के सारथी और घोड़ों को मार गिराया। मारे तीरों के रथ का चूरा चूरा कर दिया। अब मेघनाद अकेला रह गया।

सेना रात भर बड़े आनन्द में सोई। सबेरा हुआ तो श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान, जाम्बवान आदि बड़े बड़े बुद्धिमान, बलवान और अच्छी सलाह देने वाले बन्दरों को अपने पास बुला कर कहा कि बोलो, अब क्या करना चाहिए?

विचार करने के बाद यह ठहरा कि अङ्गद को लङ्का में रावण के पास भेजा जाय। वे रावण को पहले समझावें और उसका सब भेद जान लें। तब पीछे, न माने तो, लड़ाई की तैयारी हो।

अङ्गद लङ्का में गये और दर्बार में बैठे हुए रावण से बहुत सी समझाने की बातें कहीं, पर रावण ने इनको भी आड़े हाथों लिया। लाचार वे लौट आये और आकर सब हाल श्रीरामचन्द्रजी से सुना दिया। अब सब की यही सलाह ठहरी कि यह दुष्ट बिना लड़ाई के सीताजी को नहीं देगा।

अब लड़ाई की तैयारियाँ होने लगीं। मोर्चाबन्दी से लङ्का के चारों दरवाज़ों पर बानरों की सेना आ डटी। जो राक्षस दरवाज़े पर आता, बन्दर उसे झट मार डालते। इस तरह सारी लङ्का में हाहाकार मच गया। रावण तक खबर पहुँची। रावण ने बहुत सी सेना बन्दरों से लड़ने को भेजी पर वह सब मारी गई।

जब रावण ने देखा कि हमारे बहुत से बड़े बड़े वीर सेनापति मारे गये तब उसको बड़ा गुस्सा आया। उसने अपने शूरवीर बेटे मेघनाद को लड़ाई के लिए भेजा।

कर श्रीरामचन्द्रजी ने उनसे कहा कि प्यारे वीर हनुमान् सिवा तुम्हारे और कौन है जो इस काम को कर सके। इस काम के करने में केवल तुम ही समर्थ हो। इतना सुनते ही हनुमान् जड़ी लेने के लिए उत्तर दिशा की ओर चल दिये।

पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने देखा कि यहाँ तो एकही तरह की अनेक जड़ियाँ हैं। वैद्य अपने आप ही देखकर संजीवनी जड़ी ले लेगा। यह सोच कर उस जड़ी वाले पर्वत के टुकड़े को उठा कर ले चले।

उधर मूर्च्छित लक्ष्मणजी के पास बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी की क्या दशा हो रही थी ज़रा उसे भी सुन लीजिए—

उहाँ राम लछमनहिं निहारी।
बोले बचन मनुज अनुहारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहि आवा।
राम उठाइ अनुज उर लावा॥
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ।
बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेउ पितु माता।
सहेउ बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई।
उठहु बिलोकि मोरि बिकलाई॥
जो जनतेउँ बन बन्धु-बिछोहू।
पिता-बचन नहि मनतेउँ ओहू॥

जब मेघनाद ने देखा कि यह तो मुझे थोड़ी देर में मार ही डालेगा। तब उसने इनके वीरघातिनी शक्ति मारी। यह शक्ति लक्ष्मण के कलेजे को पार करके कुछ धरती में भी धँस गई। लक्ष्मण अचेत हो धरती पर गिर पड़े।

जब संध्या हुई और युद्ध बन्द हुआ तब श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को न देखकर बहुत तड़फड़ा कर हनुमान् से कहा कि लक्ष्मण कहाँ हैं ? लक्ष्मण वहाँ कहाँ थे। वे तो शक्ति के लगते ही धरती पर अचेत पड़े थे। हनुमान् ने वहाँ से उनको लाकर श्रीरामचन्द्रजी के आगे रख दिया। श्रीरामचन्द्रजी को अपने प्यारे भाई की ऐसी दशा देख कर बड़ा शोक हुआ। जाम्बवान् के कहने से लङ्का में रहने वाले सुषेण वैद्य के बुलाने को हनुमान्जी गये। वे वहाँ जाकर बड़े आदर से वैद्य को बुला लाये।

वैद्य ने लक्ष्मण को देख कर कहा कि एक जड़ी हिमालय पर्वत पर है। वह लाई जाय तो उससे इनके प्राण बचें। नहीं तो सवेरा होते ही फिर ये किसी तरह भी नहीं जी सकते।

इतना सुन कर तो श्रीरामचन्द्रजी का रहा सहा धीरज भी जाता रहा। अब सोचने लगे कि ऐसा कौन है जो इतनी दूर से जड़ी को पहचान रात ही रात में ला दे। सामने हाथ जोड़े हनुमान्जी खड़े थे। उनको देख

हनुमान् की बुद्धिमानी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी उनसे बड़े प्रेम से कौली भर कर मिले। वैद्य तो वहाँ बैठे ही थे। झट उन्होंने पर्वत पर से सजीवनी बूटी लेकर लक्ष्मणजी को सुँघा दी। उसे सूँघते ही वे ऐसे बैठ गये मानों सो कर ही उठे हों।

अब दिन निकल आया। सारी लङ्का में खबर हो गई कि लक्ष्मण फिर जी गये। अब फिर युद्ध होने लगा। रावण ने आज पहले अपने भाई कुम्भकर्ण को, बहुत सी सेना के साथ, लड़ाई में भेजा। कुम्भकर्ण भी बड़ा बलवान् था। लगा घनघोर युद्ध करने। वह जिधर को निकला उधर ही बन्दरों को पकड़ पकड़ कर लगा मारने। जब श्रीरामचन्द्रजी ने देखा कि यह दुष्ट तो हमारी सारी सेना को ही मारे डालता है तब आप उससे युद्ध करने लगे। थोड़ी देर तक तो कुम्भकर्ण इनके साथ लड़ता रहा, परन्तु इनके पैने पैने तीरों के सामने किसकी ताक़त थी जो खड़ा रह सके। एक बार श्रीरामचन्द्रजी ने ऐसा तीर मारा कि कलेजे के भीतर घुस गया। बस फिर क्या था, तीर के लगते ही लोट पोट हो गया।

जब रावण ने कुम्भकर्ण के मरने की ख़बर सुनी तब वह बड़ा दुखी हुआ। फिर उसने अपने बेटे मेघनाद को लड़ने के लिए भेजा। यह वही मेघनाद था जिसने लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया था। अब की वह बड़े ज़ोर शोर से लड़ने को आया। आते ही वह लगा बड़े ज़ोर से

सुत वित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस विचारि जिय जागहु ताता।
मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता॥
यथा पक्ष बिनु खगपति दीना।
मणि बिन फणि करिवर कर हीना॥
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोहीं।
जो जड़ दैव जियावै मोहीं॥
जैहों अवध कवन मुँह लाई।
नारि हेत प्रिय बन्धु गँवाई॥
बरु अपयश सहतेउ जग माहीं।
नारि हानि विशेष क्षति नाहीं॥
अब अपलोकि शोक यह तोरा।
सहै कठोर निठुर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा।
तात तासु तुम प्राण अधारा॥
सौंपेउ मोहि तुमहि गहि पानी।
सब विधि सुखद परम हित जानी॥
उत्तर काहि दैहों का जाई।
उठि किन मोहि समुझावहु भाई॥
बहु विधि शोचत शोच विमोचन।
श्रवत सलिल राजिवदललोचन॥
प्रभु विलाप सुनि कान, विकल भये बानर निकर।
आय गये हनुमान, जिमि करुणा महं वीर रस॥

हनुमान् की बुद्धिमानी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी उनसे बड़े प्रेम से कौली भर कर मिले। वैद्य तो वहाँ बैठे ही थे। झट उन्होंने पर्वत पर से सजीवनी बूटी लेकर लक्ष्मणजी को सुँघा दी। उसे सूँघते ही वे ऐसे बैठ गये मानों सो कर ही उठे हों।

अब दिन निकल आया। सारी लङ्का में खबर हो गई कि लक्ष्मण फिर जी गये। अब फिर युद्ध होने लगा। रावण ने आज पहले अपने भाई कुम्भकर्ण को, बहुत सी सेना के साथ, लड़ाई में भेजा। कुम्भकर्ण भी बड़ा बल वान् था। लगा घमघोर युद्ध करने। वह जिधर को निकला उधर ही बन्दरों को पकड़ पकड़ कर लगा मारने। जब श्रीरामचन्द्रजी ने देखा कि यह दुष्ट तो हमारी सारी सेना को ही मारे डालता है तब आप उससे युद्ध करने लगे। थोड़ी देर तक तो कुम्भकर्ण इनके साथ लड़ता रहा, परन्तु इनके पैने पैने तीरों के सामने किसकी ताक़त थी सो खड़ा रह सके। एक बार श्रीरामचन्द्रजी ने ऐसा तीर मारा कि कलेजे के भीतर घुस गया। बस फिर क्या था, तीर के लगते ही लोट पोट हो गया।

जब रावण ने कुम्भकर्ण के मरने की खबर सुनी तब वह बड़ा दुखी हुआ। फिर उसने अपने बेटे मेघनाद को लड़ने के लिए भेजा। यह वही मेघनाद था जिसने लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया था। अब की वह बड़े ज़ोर शोर से लड़ने को आया। आते ही वह लगा बड़े ज़ोर से

गर्जने। लड़ाई के मैदान में आकर बोला कि आओ हमा सामने, हम भी तो देखें तुम कैसे बलवान् हो। अरे राम पुत्रो! क्यों काल से लड़ाई करना चाहते हो। आ तुम्हारी कुशल इसी में है कि भाग जाओ, नहीं तो हम अभी तुमको मारे डालते हैं।

ऐसी गर्व की वाणी सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों भाई लड़ाई के सामान से तैयार होकर, ललकारते हुए आए और बोले—अरे दुष्ट, यह तो हम खूब जानते कि अब तुम सबका काल आ गया है।

इस तरह दोनों ओर से गर्मागर्मी की बातें हो क लड़ाई होने लगी। अब आपस में दोनों के शरीर लो लुहान हो गये। लक्ष्मण ने अपने पैने तीरों से उस सारथी को मार गिराया और घोड़ों को मार कर रथ क भी चूरा चूरा कर दिया। सारथी और घोड़ों को म देखकर मेघनाद को बड़ा क्रोध आया। लगा दाँत पीस और चारों तरफ़ को दौड़ कर उनको मारने। इसी तर बहुत देर तक लड़ाई होती रही। अन्त को लक्ष्मणजी क्रोध में भर कर एक ऐसा बाण छोड़ा कि वह जाते ही उसके कलेजे में घुस गया। तीर के लगते ही वह धड़ा से धरती पर गिर कर मर गया।

इसके गिरते ही बन्दर मारे खुशी के लगे किलकिलाने और इधर उधर कूदने। अब राक्षसों में भगी पड़ गई। सब भागकर अपने अपने घरों में जा घुसे। खबर देने को भी रावण के सामने जाने की किसी की हिम्मत न

पड़ी। बहुत कुछ जी कड़ा करके काँपते काँपते कुछ राक्षस रावण के पास गये और उन्होंने सिर नीचा करके मेघनाद के मरने का हाल उससे कह दिया।

अपने प्यारे बेटे का मरना सुन कर रावण को मूर्च्छा आगई। थोड़ी देर में जब चेत हुआ तब वह मारे गुस्से के काँपने लगा। उसकी आँखें चलचलाने लगीं। होठ फड़फड़ाने लगे। उसने झट अपनी सेना तैयार कराई और अबकी आप ही तीर-कमान, ढाल-तलवार लेकर रथ में सवार हो, सेना के साथ लड़ाई के मैदान में आ गरजा। वहाँ आकर उसने बड़े ज़ोर से गर्ज कर कहा—

कहँ लक्ष्मण हनुमन्त कपीशा।
कहँ रघुवीर कोशलाधीशा॥

अब राम और रावण का बड़ा घोर युद्ध होने लगा। रावण बड़ा बलवान् था। वह अपने सामने देवताओं को भी कुछ नहीं समझता था, फिर आदमी और बन्दरों की तो वह परवा ही क्या करता। रावण ने ऐसे विकट तीर चलाए कि श्रीरामचन्द्रजी के मारे एक बार मूर्च्छा भी आ गई। श्रीरामचन्द्रजी को मूर्छित देख कर विभीषण अपनी गदा उठाकर रावण की ओर दौड़ा और झट उसकी छाती में, बड़े ज़ोर से घुमाकर, गदा मारी। इतने में श्रीरामचन्द्रजी को भी चेत हो आया।

अब राम लक्ष्मण दोनों भाई और सुग्रीव की सब सेना राक्षसों से लड़ाई करने लगी। और सब राक्षसों से तो बन्दर लड़ही रहे थे। पर रावण से रामचन्द्रजी ही

भिड़ रहे थे। राम और रावण की ऐसी भयानक लड़ाई हुई कि ऐसी कभी किसी की नहीं हुई। लड़ाई होते होते आखिर को रावण मारा गया।

रावण के मरते ही सारी लङ्का में शोक छा गया। बन्दर मारे खुशी के कूदने लगे जब उस दुष्ट राक्षस के मरने की खबर वन में मुनियों ने सुनी सब बड़े प्रसन्न हुए। सबऋषि मुनि लोग श्रीरामचन्द्रजी को आशीर्वाद और धन्यवाद देने लगे।

अब युद्ध बन्द होने पर सावधान होकर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् आदि बड़े बड़े बुद्धिमानों को बुलाया। उनसे कहा कि हमने पहले प्रतिज्ञा की थी कि लङ्का का राज्य विभीषण को देंगे, सो अब हम उसको पूरा करना चाहते हैं। अब उसका समय आ गया तुम लोग विभीषण के साथ लङ्का में जाओ और बड़े आनन्द के साथ विधि पूर्वक विभीषण को राजतिलक करो। क्योंकि हम तो पिता की आज्ञा के कारण शहर में जा नहीं सकते।

अब वे सब लङ्का में जाकर विभीषण को राजतिलक कर आये। लड़ाई से बचेबचाये सारे राक्षस विभीषण को राजा मानने लगे। विभीषण बड़ा धार्मिक औरईश्वर का भक्त था, इसकारण वहाँ के रहने वाले राक्षस भी धीरे धीरे स्वभाव बदलने लगे। क्योंकि यह तो कहावत है कि "यथा राजा तथा प्रजा"।

फिर श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमान् को लङ्का में सीताजी की राज़ी ख़ुशी का समाचार लाने के लिए भेजा। समाचार पहले इसलिए मँगाया कि कहीं राक्षसों ने उनको मार न डाला हो। अब हनुमान्जी लङ्का को चल दिये। पहले की तरह अब की ये छिप कर नहीं जाते थे। अब की तो ये जिधर को जाते थे उधर ही से बहुत लङ्कावासी लोग हाथ जोड़े हुए इनके साथ चल देते थे। राक्षस इन को सीताजी के पास ले गये। सीताजी का दर्शन करके ये मन में बड़े प्रसन्न हुए। दूर ही से उन्होंने उनको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

सीताजी भी इनको देख और पहचान कर बड़ी प्रसन्न हुईं। हनुमान्जी बोले—माताजी, श्रीरामचन्द्रजी ने रावण को मार दिया। मेघनाद और कुम्भकर्ण आदि और हज़ारों राक्षस युद्ध में मारे गये। लङ्का का राज विभीषण को दे दिया। इन सब बातों को सुनकर सीताजी का चेहरा बदल गया। जो चेहरा पहले शोक से मुरझाया हुआ था वह अब आनन्द से खिल गया। जब हनुमान् चलने को हुए तब सीताजी ने कहा—

> अब सोइ यतन करहु तुम ताता।
> देखौं नयन श्याम मृदु गाता॥

अब हनुमान् श्रीरामचन्द्रजी के पास आये और जानकी जी के सब कुशल-समाचार कह सुनाये। फिर श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव और विभीषण को बुलाकर उनसे कहा—

मारुत सुत के सग सिधावहु।
सादर जनकसुता ले आवहु॥

तुरन्त ही आज्ञा पाकर वे लङ्का में पहुँचे। सीताजी को स्नान करा और शुद्ध और स्वच्छ वस्त्र पहनवा कर, पालकी में बिठा कर, श्रीरामचन्द्रजी के समीप चल दिये।

जिस सीता के कारण श्रीरामचन्द्रजी ने इतने कष्ट उठाये, जिसके लिए हनुमान् को समुद्र के फाँदने का कठिन परिश्रम उठाना पड़ा, जिसके कारण सुग्रीव, अङ्गद और जाम्बवान् आदि सैकड़ों हजारों बन्दरों ने लड़ाई में अपने हाथ पाँव तुड़वाये, और जिसके कारण लड़ाई में सैकड़ों की हत्या हो गई, भला उस जनककुमारी, दशरथ-पतोहू और संसार में विख्यात, पिता के भक्त धर्मात्मा और शूरवीर श्रीरामचन्द्रजी की धर्मपत्नी पतिव्रता सीताजी के देखने की इच्छा किसको न होती? यहाँ श्रीरामचन्द्रजी के पास बैठे हुए बन्दरों ने जब दूर से पालकी आती हुई देखी तब एकसाथ सब के जी में उनके दर्शनों की इच्छा हुई। वे सब उचक उचक कर पालकी की ओर देखने लगे। पर वे तो पालकी में परदा डाले हुए भीतर बैठी थीं। जब उचकाउचकी करने पर भी बन्दरों की इच्छा पूरी नहीं हुई तब बेचारे सब श्रीरामचन्द्रजी के मुहँ की ओर देखने लगे और मन में कहने लगे कि अब भी रामचन्द्रजी हमको उनके दर्शनों की आज्ञा दें तो अच्छा हो।

ज्यों ज्यों पालकी पास आती जाती थी त्यों त्यों बन्दरों की इच्छा और भी बढ़ने लगी। अब उनकी यह हालत थी कि कभी तो पालकी की ओर देख लें और कभी श्रीरामचन्द्रजी की ओर।

श्रीरामचन्द्रजी उनके मन की बात ताड़ गये। वे समझ गये कि सब सीताजी के देखने के लिए तड़फड़ा रहे हैं। तब श्रीरामचन्द्रजी ने पालकी वालों से कहा—

कह रघुबीर कहा मम मानहु।
सीतहि सखा पयादेहि आनहु॥

अब सीताजी पालकी से उतरीं और नीचे को नज़र किये हुये सीधे श्रीरामचन्द्रजी के पास जा बैठीं। अब बड़े आनन्द से सबने उनके दर्शन किये।

श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी से कहा कि हमने जो रावण के मारने और विभीषण को राजा बनाने की प्रतिज्ञा की थी सो पूरी हो गई। अब जहाँ तुम्हारा जी चाहे वहाँ जाओ। क्योंकि इतने दिन तक रावण के घर में रह कर हम तुमको अपने पास नहीं रख सकते। इसमें लोग हमें कहेंगे कि देखो इक्ष्वाकु-कुल में पैदा होकर दशरथ के बेटे ने राक्षस के घर में रही हुई स्त्री को भी रख लिया। हे जानकी, चाहे हमसे तुम अलग हो जाओ, चाहे हमारा प्यारा भाई यह लक्ष्मण भी क्यों न रूठ जाय, पर हम अधर्म और लोकनिन्दा का काम कभी न करेंगे।

ऐसी दृढ़ और कठिन प्रतिज्ञा को सुन कर सीताजी का चेहरा उतर गया, पर कुछ जवाब नहीं दिया। अब सीताजी ने यह सोच कर कि जब हमारे रहने से निन्दा है तब फिर हमारे जीने ही से क्या, झट लकड़ी मँगा कर चिता बनाई और उसमें आग लगा कर आप बैठ गईं। सीताजी का पतिव्रत धर्म सच्चा था, वे निर्दोष थीं, इस कारण अग्नि भी उनको भस्म न कर सका।

अब श्रीरामचन्द्रजी ने ऋषि, मुनि और देवताओं के कहने से सीताजी को ग्रहण कर लिया।

अब श्रीरामचन्द्रजी ने सब बन्दरों को बुलाकर उनसे कहा कि तुम्हारी ही सहायता से हमने रावण को मारा और सीताजी को पाया। तुमने हमारे लिए बहुत कष्ट उठाये हैं। अब तुम लोग सब अपने अपने घर जाओ और आराम से रहो। पर घर जाने को कोई भी राज़ी न हुआ। सब बोले कि महाराज, हम तो आपके साथ अयोध्या जा कर आपके राजतिलक का उत्सव देखना चाहते हैं। श्रीरामचन्द्रजी ने कह दिया, कि यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो चलो, हम बड़े प्रसन्न हैं।

अब विभीषण वहां से एक विमान लाया। वह विमान निरा सोने का था, पाये उसके चाँदी के थे। बैठने की जगहों पर जगह जगह रत्न जड़े हुए थे। उसमें जहाँ तहाँ बहुत से हीरे, पन्ने लगे हुए थे। उसमें बहुत से बजने घंटे भी बँधे हुए थे। चलते समय वे बड़ी मनोहर आवाज़ देते थे। उसे नाव की तरह का विश्वकर्मा ने बनाया था।

यह आकाश में उड़ कर चलता था। उसको चाहे जहाँ को ले जावें और चाहे जहाँ ठहरावें, यह उसमें बहुत ही अच्छा गुण था। उसमें भीतर बड़ी अच्छी चित्रकारी हो रही थी। बैठने की जगहों पर बड़े सुन्दर और मुलायम गद्दे बिछे हुए थे। यह बहुत बड़ा था उसमें रसोई अलग बनी हुई थी। पुस्तकालय अलग था। सोने के स्थान अलग थे। हर मौसम के आराम के अलग अलग मकान उसमें बने हुए थे। उसकी लागत का तो अन्दाज़ा भी नहीं हो सकता था।

ऐसे सुन्दर और मनोखे विमान पर श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण सहित सवार हो गये। पीछे से इनकी आज्ञा पाकर विभीषण और सुग्रीव आदि सब बन्दर भी उस पर चढ़ लिये। जब सब सावधानी से बैठ चुके तब श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से यह विमान ऊपर को उठा और उत्तर दिशा की ओर आकाश-मार्ग से ऊपर ही ऊपर चलने लगा।

जब विमान ऊपर को उठा तब श्रीरामचन्द्रजी ने आप भी लङ्का की खूब सैर की और सीताजी को भी कराई। विमान में बैठे हुए बन्दर बड़े खुश हो रहे थे। रास्ते में जो स्थान देखने योग्य आता था उसे श्रीरामचन्द्रजी सीताजी को दिखलाते और बतलाते जाते थे। इतने ही में चलते चलते सुग्रीव की किष्किन्ध्या नगरी आ पहुँची। श्री-रामचन्द्रजी ने कहा कि देखो जानकी, यह बन्दरों के राजा सुग्रीव की राजधानी है। यहाँ हमने बाली को मारा था।

ऐसी दृढ़ और कठिन प्रतिज्ञा को सुन कर सीताजी का चेहरा उतर गया, पर कुछ जवाब नहीं दिया। अब सीताजी ने यह सोच कर कि अब हमारे रहने से निन्दा है तब फिर हमारे जीने ही से क्या, झट लकड़ी मँगा कर चिता बनाई और उसमें आग लगा कर आप बैठ गईं। सीताजी का पतिव्रत धर्म सच्चा था, वे निर्दोष थीं, इस कारण अग्नि भी उनको भस्म न कर सका।

अब श्रीरामचन्द्रजी ने ऋषि, मुनि और देवताओं के कहने से सीताजी को ग्रहण कर लिया।

अब श्रीरामचन्द्रजी ने सब बन्दरों को बुलाकर उनसे कहा कि तुम्हारी ही सहायता से हमने रावण को मारा और सीताजी को पाया। तुमने हमारे लिए बहुत कष्ट उठाये हैं। अब तुम लोग सब अपने अपने घर जाओ और आराम से रहो। पर घर जाने को कोई भी राज़ी न हुआ। सब बोले कि महाराज, हम तो आपके साथ अयोध्या जा कर आपके राजतिलक का उत्सव देखना चाहते हैं। श्रीरामचन्द्रजी ने कह दिया, कि यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो चलो, हम बड़े प्रसन्न हैं।

अब विभीषण लङ्का से एक विमान लाया। यह विमान निरा सोने का था, पाये उसके चाँदी के थे। बैठने की जगहों पर जगह जगह रत्न जड़े हुए थे। उसमें जहाँ तहाँ बहुत से हीरे पन्ने लगे हुए थे। उसमें बहुत से बजने घंटे भी बँधे हुए थे। चलते समय वे बड़ी मनोहर आवाज़ देते थे। उसे नाव की तरह का विश्वकर्मा ने बनाया था।

वह आकाश में उड़ कर चलता था । उसको चाहे जहाँ को ले जावें और चाहे जहाँ ठहरावें, यह उसमें बहुत ही अच्छा गुण था । उसमें भीतर बड़ी अच्छी चित्रकारी हो रही थी । बैठने की जगहों पर बड़े सुन्दर और मुलायम गद्दे बिछे हुए थे । वह बहुत बड़ा था उसमें रसोई अलग बनी हुई थी । पुस्तकालय अलग था । सोने के स्थान अलग थे । हर मौसम के आराम के अलग अलग मकान उसमें बने हुए थे । उसकी लागत का तो अन्दाज़ा भी नहीं हो सकता था ।

ऐसे सुन्दर और अनोखे विमान पर श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण सहित सवार हो गये । पीछे से इनकी आज्ञा पाकर विभीषण और सुग्रीव आदि सब बन्दर भी उस पर चढ़ लिये । जब सब सावधानी से बैठ चुके तब श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से वह विमान ऊपर को उठा और उत्तर दिशा की ओर आकाश-मार्ग से ऊपर ही ऊपर चलने लगा ।

जब विमान ऊपर को उठा तब श्रीरामचन्द्रजी ने आप भी लङ्का की खूब सैर की और सीताजी को भी कराई । विमान में बैठे हुए बन्दर बड़े खुश हो रहे थे । रास्ते में जो स्थान देखने योग्य आता था उसे श्रीरामचन्द्रजी सीताजी को दिखलाते और बतलाते जाते थे । इतने ही में चलते चलते सुग्रीव की किष्किन्धा नगरी आ पहुँची । श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि देखो जानकी, यह बन्दरों के राजा सुग्रीव की राजधानी है । यहाँ हमने बाली को मारा था ।

सीताजी के मन में सुग्रीव आदि की स्त्रियों के देखने की बड़ी इच्छा उत्पन्न हुई। वे श्रीरामचन्द्रजी से बोलीं—स्वामी, हमारी इच्छा है, यदि आपकी आज्ञा हो तो, हम राजा सुग्रीव आदि की स्त्रियों को भी अपने साथ अयोध्या ले चलें। उन्होंने आज्ञा दे दी। किष्किन्धा पुरी से उन को भी साथ ले लिया। सीताजी और वे स्त्रियाँ आपस में मिल कर बहुत ही प्रसन्न हुईं।

अब किष्किन्धा पुरी से विमान आगे चला। श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे प्रिये, यह जो बड़ा भारी पर्वत दीख रहा है इसका नाम ऋष्यमूक है। यहीं हमारी और सुग्रीव की मित्रता हुई थी। देखो यह पम्पा नाम की नदी है। यहाँ पर हमने तुम्हारे लिए बड़ा शोक किया था यहाँ पर हमने कबन्ध राक्षस को मारा था। देखो, यह जनस्थान भी आ गया। देखो, वह भारी बड़ का पेड़ है। यहीं रावण ने जटायु को मारा था। हे प्यारी, यह वही हमारा प्यारा आश्रम है। देखो वह हमारी पत्तों की कुटी भी दीखती है। यहीं से तुमको रावण चुरा ले गया था। देखो, यह गोदावरी भी दीखने लगी। यह अगस्त्यजी का आश्रम है। देखो, यहाँ हमने विराध राक्षस को मारा था। देखो, यहाँ तुमसे अनसूयाजी का मिलाप हुआ था। देखो, यह वही चित्रकूट दीखने लगा, जहाँ भरतजी हमको लौटाने के लिए आये थे। यह देखो, यमुना नदी कैसी मनोहर दीखती है। अहा, यह भरद्वाजजी का आश्रम आ गया।

यहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी ने विमान को नीचे उतारा और भरद्वाजजी से मिले। उनसे मिल कर इन्होंने अपनी अयोध्या पुरी का कुशलसमाचार पूछा। भरद्वाजजी ने कहा कि हे रामचन्द्र, हम तुम को १४ वर्ष तक पिताजी की आज्ञा का पालन करके कुशल-पूर्वक आये देखकर बड़े प्रसन्न हैं। अयोध्या में सब राज़ी हैं, पर भरत तुमको रात दिन याद करते रहते हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि जो रामचन्द्रजी चौदह वर्ष बीतते ही अगले दिन दर्शन न देंगे तो मैं जीता न रहूँगा। सो महाराज, आज चौदहवर्ष बीत गये। यदि तुम कल अयोध्या न गये तो भरत को बड़ा दुःख होगा। इसलिए आप कल दर्शन देकर ज़रूर अयोध्यावासियों का वियोग दुःख दूर कीजिए। वे आपकी बहुत ही बाट देख रहे हैं।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि महाराज, मैं भी इसी लिए अयोध्या आने की जल्दी कर रहा हूँ। अब आप ऐसी कृपा कीजिए कि जिससे यहाँ से अयोध्या तक, हम सब बेखटके चले जायँ इसलिए आप हमें आशीर्वाद दीजिए।

फिर श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमान्‌जी को बुला कर कहा कि हे वीर, तुम तुरन्त ही अयोध्या को जाओ। वहाँ पहुँच कर देखो तो कि राजमन्दिर में सब लोग प्रसन्न तो हैं। परन्तु मार्ग में शृङ्गबेरपुर होते जाना। क्योंकि वहाँ हमारा मित्र गुह रहता है। उससे मिलना और हमारे आने का सब समाचार सुना देना। वह हमको आता जान प्रसन्न होगा। उसी से अयोध्या का और भरत का सब हाल

पूछ लेना। अब तुम भरतजी के पास पहुँचो तब हमारी ओर से कहना कि राम लक्ष्मण और सीता सहित प्रसन्न हैं। सब खबर ब्योरेवार, हमारी यात्रा और अपने मिलने और सुग्रीव की मित्रता और लङ्का के युद्ध का वर्णन करना और कहना कि अब रामचन्द्र बहुत ही निकट आ रहे हैं और बहुत से वानरों समेत सुग्रीव और राक्षसों सहित विभीषण उनके साथ हैं। भरत का विचार अच्छा या बुरा जैसा हो उसे तुम बुद्धि से जान लेना और जल्द लौट कर हमसे रास्ते ही में कह देना। क्योंकि ऐसे मनुष्य थोड़े हैं जिनके मन राज्य के मिल जाने पर न बदल जाते हों। और जो चौदह वर्ष राज्य करने से उनको राज्य का लालच हो गया हो तो बड़ी अच्छी बात है। पर तुम यह समाचार हमको झट लौट कर रास्ते ही में सुना देना। और जो भरत हमारे आने की आशा में बैठे हों और तुम को वहीं ठहराने लगें तो तुम ठहर जाना। हम तुम्हारे पीछे ही पीछे आते हैं।

अब हनुमान्जी पवन के समान वेग से उड़ कर चल दिये। पहले शृङ्गवेरपुर में राजा गुह से मिले। उनसे मिल कर अयोध्या को चल दिये। वहाँ देखा कि अयोध्या के निकट ही नन्दिग्राम में एक महात्मा, रामचन्द्रजी की सूरत के मृगछाला ओढ़े, बड़े शोकातुर और उदास अपने आश्रम पर सिंहासन बिछाये बैठे हैं। जटा रखाये हैं। सामने बड़ी सुन्दर राजगद्दी बिछी है। उस पर एक जोड़ी खड़ाऊँ की धरी है। बहुत से पुरोहित मन्त्री आगे बै

हैं। राज का काम-काज हो रहा है। देखते ही समझ गये कि हो न हो ये भरतजी ही हैं। यह विचार कर उनके सामने आकर कहने लगे।

राजन्, जिन रामचन्द्रजी का ध्यान आप कर रहे हैं उन्होंने अपना कुशल कह आपका कुशल पूछा है। अब इस दुःख और शोक को छोड़ दीजिए। आप बहुत ही जल्द अपने भाई श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करेंगे। वे कुटुम्ब सहित रावण को मार, सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण और बहुत से वानरों के साथ आपके पास भरद्वाजजी के आश्रम पर आ गये हैं। अब वे यहाँ आया ही चाहते हैं।

हनुमान्‌जी के, बहुत मतलब लिये थोड़े से अक्षरों को सुन कर भरतजी को जितना आनन्द हुआ, वह कहा नहीं जा सकता। वे हनुमान्‌जी को छाती से लगा कर बड़े प्यार से बोले—प्यारे, यह आनन्ददायक समाचार सुनाने के बदले हमारे पास ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसे देकर हम बदला चुका सकें। देखो प्यारे, हमारे भाई को वन गये बहुत ही दिन बीत गये। अहोभाग्य हैं हमारे जो हमने आज उनका आना सुना।

समर विजय रघुनाथ के, सुनहि जे सन्त सुजान।
विनय विवेक विभूति नित, तिनहि देहि भगवान॥

परन्तु जब श्रीरामचन्द्रजी ने देखा कि कुछ लोगों की राय नहीं है तब मोह से मूर्छित हो गये। जानकीजी धरती माता से प्रार्थना करके परम धाम को सिधार गई।

श्रीसीताजी की प्रार्थना सुन कर पृथ्वी फट गई और सीताजी उसी में समा गईं। जहाँ से आई थीं वहीं चली गईं।

फिर श्रीरामचन्द्रजी ने अपने "कुश" और "लव" पुत्र को कुशावती और अवन्तिका पुरी का राजा बनाया और लक्ष्मण के पुत्र "अङ्गद" और "चन्द्रकेतु" को पश्चिम दिशा में अङ्गदनगर और चन्द्रावती का राज दिया और भरत के पुत्र "पुष्कर" और "तक्ष" को पुष्करावती और तक्षशिला का राज दिया और शत्रुघ्न के पुत्र "सुबाहु" और "शत्रुघात" को मथुरा और वैश स्थान का राजा बनाया।

इस प्रकार राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों भाई अपने अपने पुत्रों को राज देकर कृतकृत्य हो गये।

बालसखा-पुस्तकमाला

नाम की एक सीरीज़ इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित होती है। इस पुस्तकमाला में अब तक २३ किताबें निकल चुकी हैं। इन पुस्तकों की भाषा ऐसी सरल है कि बालकों और स्त्रियों तक की समझ में बड़ी आसानी से आ जाती है। हिन्दी पत्र-सम्पादकों ने इन पुस्तकों की बड़ी प्रशंसा की है। यही नहीं इस 'माला' की कई किताबें सरकारी स्कूलों में भी जारी हो गई हैं। इन पुस्तकों के नाम मूल्य सहित हम यहाँ लिखते हैं, जिन्हें ज़रूरत हो, वे नीचे लिखे पते से मँगा सकते हैं।

बालभारत (भाग १) पूरे महाभारत की संक्षिप्त कथा ॥)
बालभारत (भाग २) महाभारत की अनेक कथा ।॥)
बालरामायण (रामायण के सातों काण्डों की कथा) ॥)
बालमनुस्मृति (पूरी मनुस्मृति का सरल सार) ।)
बालनीतिमाला (विदुरादि नीतिज्ञों के वचन) ॥)
बालभागवत (भाग १) भागवत की संक्षिप्त कथा ॥)
बालभागवत (भाग २) भागवती श्रीकृष्ण-कथा ॥)
बालगीता (गीता के १८ हो अध्यायों का सरल सार) ।॥)
बालोपदेश (भर्तृहरिकृत नीति-वैराग्य शतक का सार) ।)

अथ

श्रीमदनुभूतिस्वरूपाचार्यप्रणीत

सारस्वतव्याकरणस्य

पूर्वार्धम् ।

टिप्पण्या विलसितम् ।

पणशीकरोपाह्वलक्ष्मणशर्मतनुजनुषा

वासुदेवशर्मणा

संशोधितम्

मुम्बय्यां

तुकाराम जावजी

इत्येतेषाकृते तेषामेव 'निर्णयसागर' मुद्रणाख्ये बालकृष्ण रामचंद्र घाणेकर इत्यनेन मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

शकाब्दा १८३१ सन १९१०

मूल्य । रूप्यपादः ।

सारस्वतस्य विषयानुक्रमः।

श्री॰ ॥

सारस्वतव्याकरणम् ।

संज्ञाप्रकरणम् ।

प्रणम्य परमात्मानं बालधीवृद्धिसिद्धये ॥
सारस्वतीमृजुं कुर्वे प्रक्रियां नातिविस्तराम् ॥ १ ॥
इन्द्रादयोऽपि यस्यान्तं न ययुः शब्दवारिधेः ॥
प्रक्रिया तस्य कृत्स्नस्य क्षमो वक्तुं नरः कथम् ॥२॥

तत्र तावत्संज्ञा संव्यवहाराय संगृह्यते ॥

अइउऋऌ समानाः ॥ १ ॥

अनेन प्रत्याहारग्रहणाय वर्णाः परिगण्यन्ते तेषां समानसंज्ञा च विधीयते । नैतेषु सूत्रेषु संधि-

---

१ अत्राह अनुभूतिस्वरूपाचार्य इति कर्ताऽध्याहार्य । २ अवैयाकरण(अज्ञ)जनबुद्धिवर्धनाय । ३ सरस्वतीप्रणीतसूत्रसंबन्धिनीम् । ४ सरलाम् । ५ सारस्वतव्याकरणाख्याम् । ६ शब्दबाहुल्यरहिताम् । ७ अष्टौ महाव्याकरणप्रणेतारोऽपि । ८ शब्दसमुद्ररूपव्याकरणस्य । ९ शब्दव्युत्पत्तिम् । १० अशेषव्याकरणस्य । ११ समर्थ । १२ सम्यग्व्याकरणशास्त्रव्यवहाराय । १३ उक्तवक्ष्यमाणसूत्राणां समुच्चयेन । १४ प्रत्याहारलक्षणमग्रे स्फुटीभविष्यति । १५ परिपाट्या प्रकाश्यन्ते ।

रनुसंधेयः । अविवक्षितत्वात् 'विवक्षितस्तु संधिर्भवति' इति नियमात् । लौकिकप्रयोगनिष्पत्तये समयमात्रत्वाच्च ॥ १ ॥

ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः सवर्णाः ॥ २ ॥

एतेषां ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः परस्परं सवर्णा भण्यन्ते । लोकाच्छेषस्य सिद्धिरिति वक्ष्यति । ततो लोकत एव ह्रस्वादिसंज्ञा ज्ञातव्याः । एकमात्रो ह्रस्वः । द्विमात्रो दीर्घः । त्रिमात्रः प्लुतः । व्यञ्जनं चार्धमात्रकम् । एषां मध्ये तूदात्तादिभेदाः सन्ति । उच्चैरुपलभ्यमान उदात्तः । नीचैरनुदात्तः । समवृत्त्या स्वरितः । ए ऐ ओ औ संध्यक्षराणि । एषां ह्रस्वा न सन्ति ॥ २ ॥

उभये स्वराः ॥ ३ ॥

अकारादयः पञ्च[१] एकारादयश्चत्वार इत्युभये स्वरा उच्यन्ते ॥ ३ ॥

अवर्जा नामिनः ॥ ४ ॥

अवर्णवर्जाः स्वरा नामिन उच्यन्ते । अनुक्रान्तास्तावत्स्वराः । प्रत्याहारं[३] जिघ्राहयिषया व्यञ्जनान्यनु-

---

१ व्यावहारिकप्रयोगसिद्ध्यर्थम् । २ 'अ इ उ ऋ ऌ समानाः' 'ए ऐ ओ औ संध्यक्षराणि' इति सूत्रोक्ताः स्वराः । ३ प्रतिकार्यमाह्रियन्ते इति प्रत्याहाराः । ४ प्रत्याहारोपयुक्तानि यथा स्युस्तथा सूत्रेऽनुक्तान्यपि हादीनि व्यञ्जनानि क्रमेण

क्रामति । हयवरल, ञणनङम, झढधघभ, जबदगड, छठथखफ, चटतकप, शषसेति ॥ ४ ॥

आद्यन्ताभ्याम् ॥ ५ ॥

प्रत्याहारं जिघृक्षता आद्यन्ताभ्यामेते वर्णा ग्राह्याः । आदिर्वर्णोऽन्त्येन सह गृह्यमाणस्तन्नामा प्रत्याहारः । तथाहि—अकारो वकारेण सह गृह्यमाण अव प्रत्याहारः । स च अइउऋऌएऐओऔ, हयवरल, ञणनङम, झढधघभ, जबदगड, इत्येतावत्संख्याकः सपद्यते । चटतकप इति चप प्रत्याहार । जबदगड इति जड प्रत्याहारः । झढधघभ इति झभ प्रत्याहार । ञणनङम इति ञम प्रत्याहारः । एव यत्र यत्र येन येन प्रत्याहारेण कृत्य स तत्र तत्र ग्राह्य । सख्यानियमस्तु नास्ति ॥ ५ ॥

---

*प्रत्याहाराणा सख्यानियमस्तु नास्तीत्युक्त तथापि बालबोधाय चन्द्रकीर्त्याद्युक्तप्रत्याहारसंग्रहोऽयं कोष्ठविन्यासेन क्रियते ।

१ हस	२ झव	३ जय	४ यप	५ अव	६ इल
७ चप	८ ञम	९ झभ	१० खस	११ झस	१२ छत
१३ यम	१४ हव	१५ खप	१६ डव	१७ ढभ	१८ रस
१९ यस	२० शस	२१ झप	२२ अव	२३ ओ	२४ मन

एव चतुर्विंशतिः प्रत्याहाराः ।

हसा व्यञ्जनानि ॥ ६ ॥

हकारादय सकारान्ता वर्णा हसा व्यञ्जनानि भवन्ति। स्वरहीनं व्यञ्जनम्। तेष्वकारः सुखोच्चारणार्थत्वादित्सञ्ज्ञको भवति ॥ ६ ॥

कार्यायेत् ॥ ७ ॥

प्रत्ययाद्यतिरिक्तः कस्मैचित्कार्याय योच्चार्यमाणो वर्ण इत्संज्ञको भवति। यस्येत्संज्ञा तस्य लोपः। प्रत्ययादर्शनं लुक्। वर्णादर्शनं लोपः। वर्णविरोधी लोपश्च। मित्रवदागमः। शत्रुवदादेशः। स्वैरानन्तरिता हसाः संयोगः। कु चु टु तु पु वर्गाः। उकारः पञ्चवर्णपरिग्रहणार्थः ॥ ७ ॥

अरेओ नामिनो गुण ॥ ८ ॥

नामिस्थानिका अर् ए ओ एते गुणसंज्ञका भवन्ति ॥ ८ ॥

आरैऔ वृद्धि ॥ ९ ॥

आ आर् ऐ औ एते वृद्धिसंज्ञका भवन्ति ॥९॥

अन्त्यस्वरादिष्टि ॥ १० ॥

अन्त्यो यः स्वरस्तदादिर्वर्ण स टिसंज्ञको भवति १०

---

१ अकारादिस्वरै रहित स्वरेभ्योऽन्यश्च। २ स्थानाङ्कश। ३ असंधिप्रयोजकमदर्शनम्। ४ मध्ये स्वरै रहिता हसा केवलव्यञ्जनानि। ५ कु इत्यनेन क ख ग घ ङ इत्येवं प्रत्येकमेत स्वीयपञ्चकग्राहकाः। ६ अयर्जस्वरा।

अन्त्यात्पूर्व उपधा ॥ ११ ॥

अन्त्याद्वर्णमात्रात्पूर्वो यो वर्णः स उपधासञ्ज्ञको भवति । असंयोगादिपरो ह्रस्वो लघुः । विसर्गानुस्वारसंयोगादिपरो दीर्घश्च गुरु ॥ ११ ॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिक ॥ १२ ॥

मुखनासिकाभ्यामुच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिक । द्विबिन्दुर्विसर्ग । शिरोबिन्दुरनुस्वारः । अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणा मूर्धा । ऌतुलसाना दन्ता । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङणनाना नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । ≍क इति जिह्वामूलीयः । ≍प इत्युपध्मानीयः । अं इत्यनुस्वारः । अः इति विसर्गः ॥ १२ ॥

इति संज्ञाप्रक्रिया ॥

अधुना स्वरसंधिरभिधीयते ।

इ य स्वरे ॥ १ ॥

इवर्णो यत्वमापद्यते स्वरे परे । दधि आनय इति स्थिते दध् य् आनय इति तावद्भवति ॥ १ ॥

[illegible] । २ उभयो

ऐ आय् ॥ १० ॥

ऐकार आय् भवति स्वरे परे । नै अकः ना-
यक ॥ १० ॥

औ आव् ॥ ११ ॥

औकार आव् भवति स्वरे परे । तौ इह तावि
ह ॥ ११ ॥

य्वोर्लोपश् वा पदान्ते ॥ १२ ॥

पदान्ते स्थितानामयादीनां यकारवकारयोर्लो-
पश् वा भवति स्वरे परे । तौ इह तायिह ता इह ।
ते आगताः तयागताः त आगता । पटो इह पट-
यिह पट इह । तस्मै एतत् तस्मायेतत् तस्मा एतत् ।
लोपशि पुनर्न संधि । छन्दसि तु भवति । हे सखे
इति हे सखयिति हे सखेति ॥ १२ ॥

एदोतोऽत ॥ १३ ॥

पदान्ते स्थितादेकारादोकाराश्च परस्याकारस्य लोपो
भवति । ते अत्र तेऽत्र । पटो अत्र पटोऽत्र ॥ १३ ॥

सवर्णे दीर्घ सह ॥ १४ ॥

सवर्णस्य सवर्णे परे सह दीर्घो भवति । श्रद्धा
अत्र श्रद्धात्र । दधि इह दधीह । भानु उदयः
भानूदयः । पितृ ऋणं पितृणम् । दण्ड अग्र दण्डा-
ग्रम् ॥ 'अदीर्घो दीर्घतां याति नास्ति दीर्घस्य दी-
। पूर्वदीर्घस्वर दृष्ट्वा परलोपो विधीयते ॥ १ ॥

सामान्यशास्त्रतो नून विशेषो बलवान्भवेत्। परेण पूर्वबाधो वा प्रायशो दृश्यतामिह ॥ २ ॥' १४ ॥

अ इ ए ॥ १५ ॥

अवर्ण इवर्णे परे सह ए भवति । तव इद तवेदम् । मम इदं ममेदम् ॥ (हलादेरीषादौ टेर्लोपो वक्तव्य*) हल ईषा हलीषा । लाङ्गल ईषा लाङ्गलीषा । मनस् ईषा मनीषा । शक अन्धुः शकन्धुः । कर्क अन्धुः कर्कन्धुः । कुल अटा कुलटा । सीमन् अन्तः सीमन्तः ॥ १५ ॥

ओमि च ॥ १६ ॥

ओमि परे नित्यं टेर्लोपो भवति । अद्य ओम् अद्योम् ॥ १६ ॥

उ ओ ॥ १७ ॥

अवर्ण उवर्णे परे सह ओ भवति । गङ्गा उदकम् गङ्गोदकम् । तीर्थं उदकं तीर्थोदकम् ॥ १७ ॥

ऋ अर् ॥ १८ ॥

अवर्ण ऋवर्णे परे सह अर् भवति । तव ऋद्धिः तवर्द्धिः ॥ १८ ॥

क्वचिदार् ॥ १९ ॥

अवर्ण ऋवर्णे परे सह समासे सति क्वचिदार्

---

१ बहुव्यापक सामान्यम् । २ अल्पव्यापको विशेष । ३ बाहुल्येन । ४ परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तर बलीय इत्येतन्मूलिकैवेय कारिका । ५ ओंकारे ।

भवति । ऋण ऋण ऋणार्णम् । तृतीयासमासे च । सुखेन ऋतः सुखार्तः । शीतार्तः दुःखार्तः । तृतीयेति किम् । परमर्तः ॥ १९ ॥

ऌ अल् ॥ २० ॥

अवर्णः ऌवर्णे परे सह अल् भवति । तव ऌकार तवल्कारः ॥ (ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वक्तव्यम्*) होतृ ऌकारः होतृकारः । होत्ल्कारः । (रलयोः सावर्ण्यं वा वक्तव्यम्*) परि अङ्कः पर्यङ्कः पल्यङ्कः ॥ २० ॥

ए ऐ ऐ ॥ २१ ॥

अवर्ण एकारे ऐकारे च परे सह ऐकारो भवति । तव एषा तवैषा । तव ऐश्वर्यं तवैश्वर्यम् ॥ २१ ॥

ओ औ औ ॥ २२ ॥

अवर्ण ओकारे औकारे च परे सह औकारो भवति । तव ओदनम् तवौदनम् । तव औत्सुक्यम् तवौत्सुक्यम् ॥ २२ ॥

ओष्ठोत्वोर्वा समासे ॥ २३ ॥

अवर्णस्य ओष्ठोत्वोः परयोर्वा सह औत्व भवति समासे सति । बिम्ब ओष्ठः बिम्बौष्ठः बिम्बोष्ठ । स्थूल ओतुः स्थूलौतु स्थूलोतुः ॥ २३ ॥

इति स्वरसंधिः ॥

---

१ प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे । प्र ऋणं प्रार्णमित्यादि ।

अथ प्रकृतिभाव उच्यते ।

नामी ॥ १ ॥

अदस अमीशब्द' संधिं न प्राप्नोति । अमी आदित्याः । अमी चष्ट्रा । अमी एडकाः । अदस इति किम् । अमो रोगस्तद्वान् । अमी अत्र अम्यत्र ॥१॥

य्वे द्वित्वे ॥ २ ॥

ई च ऊ च ए च य्वे । ईकारान्त ऊकारान्त एकारान्तश्च शब्दो द्वित्वे वर्तमानः सधिं न प्राप्नोति ॥ (मणीवादिवर्जम्*) । अग्नी अत्र । पटू अत्र । माले आनय । मणीवादीति किम् । मणी इव मणीव । रोदसी इव रोदसीव । दम्पती इव दम्पतीव । जम्पती इव जम्पतीव ॥ २ ॥

औ निपात ॥ ३ ॥

आकार ओकार निपात एकस्वरश्च सधिं न प्राप्नोति ॥ 'औसमैरीक्ष्यसे न त्वाममृतार्दैन्द्रतोऽखिलैः । आ एवं सर्ववेदार्थ आ एव सद्वचो हरेः॥१॥ ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च य' । एतमात ङित्तं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित् ॥ २ ॥' आ एवं किल मन्यसे नो अत्र स्थातव्यम् । उ उत्तिष्ठ अ अपेहि । इ इन्द्रं पश्य ॥ ३ ॥

---

१ यथावस्थितस्वरूपेणावस्थिति । २ मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम ।

पृषोदरे ॥५॥ वर्णनाशविकाराभ्यां धातोरतिशयेन यः । योगः स उच्यते मार्जैर्मयूरभ्रमरादिषु ॥६॥

इति विसर्गसंधिः ॥

अथ षड्लिङ्गा ॥

[तत्र स्वरान्ता पुंलिङ्गा]

अथ विभक्तिर्विभाव्यते । सा द्विधा स्यादि स्त्यादिश्च ।

विभक्त्यन्तं पदम् ॥ १ ॥

तत्र स्यादिर्विभक्तिर्नाम्नो योज्यते ॥ १ ॥

अविभक्ति नाम ॥ २ ॥

विभक्तिरहितं धातुवर्जितं चार्थवच्छब्दरूपं नामोच्यते । कृत्तद्धितसमासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञा इति केचित् ॥ २ ॥

तस्मात् सि औ जस्, अम् औ शस्, टा भ्याम् भिस्, ङे भ्याम् भ्यस्, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङस् ओस् आम्, ङि　　।　　।३॥

रसे पदान्ते च। देव । द्वित्वविवक्षाया देवौ । वहुत्वविवक्षाया प्रथमावहुवचने जस्। जसो जस्येत्सञ्ज्ञाया तस्य लोपः। प्रयोजन च 'जसी' इति विशेषणार्थम्। देव अस् इति स्थिते दीर्घविसर्गौ। देवा॥ (अकाराज्जसोऽसुक् कश्चिद्वक्तव्यः*) । देवास ब्राह्मणासः। द्वितीयैकवचने देव अम् इति स्थिते॥४॥

अम्शसोरस्य ॥ ५ ॥

समानादुत्तरयोः अम्शसोरकारस्य लोपो भवत्यधातो । देवम् । देवौ । वहुवचने देव शस् इति स्थिते शकार 'शसि' इति कार्यार्थ ॥ ५ ॥

सो न. पुस ॥ ६ ॥

पुलिङ्गात्समानादुत्तरस्य शस सकारस्य नकारादेशो भवति ॥ ६ ॥

शसि ॥ ७ ॥

शसि परे पूर्वस्य स्वरस्य दीर्घो भवति । यदादेशस्तद्वद्भवति न तु वर्णमात्रविधौ । देवान् । तृतीयैकवचने देव टा इति स्थिते । टकारानुवन्ध 'टेन' इति विशेषणार्थः ॥ ७ ॥

टेन ॥ ८ ॥

अकारात्परष्टा इनो भवति । देवेन ॥ ८ ॥

आद्भि ॥ ९ ॥

अकारस्य आकारादेशो भवति भकारे परे । देवाभ्याम् ॥ ९ ॥

ओसि ॥ १५ ॥

अकारस्य ओसि परे एत्त्वं भवति। देवयो ॥१५॥

नुडाम ॥ १६ ॥

समानात्परस्यामो नुडागमो भवति । टित्वादा-
। । उकार उच्चारणार्थ ॥ १६ ॥

नामि ॥ १७ ॥

नामि परे पूर्वस्य दीर्घो भवति । देवानाम् ।
धातोः । चने देव ङि इति स्थिते । 'अ इ ए' । देवे ।
ते शकार वत् । सप्तमीबहुवचने देव सुप् इति स्थिते
संज्ञाया लोप । 'ए स्भि बहुत्वे' ॥ १७ ॥

पुल्लिङ्गात्स्मात् प स कृतस्य ॥ १८ ॥

शो भर्वा दिलाच्च प्रत्याहारादुत्तरस्य केनचित्सूत्रेण
कारस्य षकारादेशो भवति । देवेषु ॥१८॥

शसि परे आमन्त्रणे सिर्धिः ॥ १९ ॥

बहुभवति णमभिमुखीकरण तस्मिन्नर्थे विहितः सि-
कवचने देव
इति विशे ति ॥ १९ ॥

नाद्धेर्लोपोऽधातो ॥ २०॥

अकारात्परस्य धेर्लोपो भवत्यधातोः । (आभि-
स्ये हेशब्दस्य प्राक् प्रयोग) हे देव ।

अकारस्य र देवा । एव ४८५८सा...
साम्याम् ॥ पुंलिङ्गा । अ ...ानामा

दीना तु विशेषः । सर्व । विश्व । उभ । उभय । अन्य । अन्यतर । इतर । डतर । डतम । कतर । कतम । सम । सिम । नेम । एक । पूर्व । पर । अवर । दक्षिण । उत्तर । अपर । अधर । स्व । अन्तर् । त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । द्वि । किम् । युष्मत् । अस्मत् । भवतु । एते सर्वादयस्त्रिलिङ्गाः । तत्र पुंलिङ्गत्वेन रूपं ज्ञेयम् । सर्वः । सर्वौ । बहुवचने सर्व अस् इति स्थिते ॥ २० ॥

जसी ॥ २१ ॥

सर्वादेरकान्तात्परो जस् ई भवति । 'अ इ ए' । सर्वे । सर्वम् । सर्वौ । सर्वान् । 'अम्शसोरस्य' 'सो न पुंसः' 'शसि' पूर्वस्य दीर्घः । तृतीयैकवचने सर्व इन इति स्थिते ॥ २१ ॥

ष्रनों णोऽनन्ते ॥ २२ ॥

षकाररेफऋवर्णेभ्यः परस्य नकारस्य णकारादेशो भवति । अन्ते स्थितस्य न भवति सर्वानि स्यादौ ॥ २१ ॥

अवकुप्वन्तरेऽपि ॥ २३ ॥

सर्वादेः स्मट् ॥ २४ ॥

सर्वादेरकारान्तात्परस्य चतुर्थ्येकवचनस्य स्मडागमो भवति । 'ए ऐ ऐ' । सर्वस्मै । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । पञ्चम्येकवचने सर्व अत् इति स्थिते॥२४॥

अत सर्वादे ॥ २५ ॥

सर्वादेरकारान्तात्परस्यातः स्मडागमो भवति । सर्वस्मात् । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । षष्ठ्येकवचने सर्व अस् इति स्थिते 'ङस् स्य' । सर्वस्य । 'ए अय्' । सर्वयोः । सर्व आम् इति स्थिते ॥ २५ ॥

सुडाम ॥ २६ ॥

सर्वादेः परस्यामः सुडागमो भवति । सर्वेषाम् । सप्तम्येकवचने सर्व ङि इति स्थिते ॥ २६ ॥

ङि स्मिन् ॥ २७ ॥

सर्वादेरकारान्तात्परो ङिः स्मिन् भवति । सर्वस्मिन् । सर्वयोः सर्वेषु ॥ [3]हे सर्व । हे सर्वौ । हे सर्वे । एव विश्वादीनामेकशब्दपर्यन्ताना रूप ज्ञेय । डतरडतमौ विहाय । तौ प्रत्ययौ । तदन्तदन्ताः शब्दा ग्राह्याः । पूर्वः पूर्वौ ॥ (पूर्वादीना तु नवाना जसि ईकारो वा वक्तव्यः*) पूर्वे । पूर्वा । परे ।

---

१ टकार स्थाननियमार्थ । २ 'एस् भि मद्वत्ते' इत्यकारस्येत्वम् । 'क्विलात्प स कृतस्य' इति षत्वम् । ३ आभिमुख्याभिव्यक्तये संबुद्धौ सर्वत्र हेशब्दस्य प्राक्प्रयोग ।

परा इत्यादि ॥ (ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा वक्तव्यौ*) । पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे इत्यादि । (प्रथमचरमतयायडल्पार्धकतिपयनेमानां जसीकारो वा वक्तव्यः*) । प्रथमे । प्रथमाः । चरमे । चरमाः । शेषं देववत् । तयायडौ प्रत्ययौ ॥ (तीयस्य सर्वशब्दवद्रूपं ङित्सु वा वक्तव्यम्*) । द्वितीयस्मै । द्वितीयाय । द्वितीयस्मात् । द्वितीयात् । द्वितीयस्मिन् । द्वितीये । एवं तृतीयः । उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः । उभौ । उभौ । उभाभ्याम् । उभाभ्याम् । उभाभ्याम् । उभयोः । उभयोः । हे उभौ । उभयशब्दस्य द्विवचनाभावादेकवचनबहुवचने भवतः । उभयः । उभये । उभयम् । उभयान् । उभयेन । उभयैः । उभयस्मै । उभयेभ्यः । इत्यादि । अकारान्तः पुंलिङ्गो मासशब्दः ॥ २७ ॥

मासस्याल्लोपो वा ॥ २८ ॥

मासशब्दस्याकारस्य लोपो वा भवति सर्वासु विभक्तिषु परतः ॥ २८ ॥

हसेपः सेर्लोपः ॥ २९ ॥

हसान्तादीबन्ताच्च परस्य सेर्लोपो भवति । माः मासः मासौ मासौ मासः मासाः । मासम् मासम् मासौ मासौ मासः मासान् । मासा मासेन मा- मासाभ्याम् माभिः मासैः । मासे मासाय मासाभ्याम् माभ्यः । ...

मासात् माभ्याम् मासाभ्याम् माभ्यः मासेभ्य[१] । मासः मासस्य मासोः मासयोः मासाम् मासानाम् । मासि मासे मासोः मासयोः मास्सु मासेषु । हे माः हे मास हे मासौ हे मासौ हे मासः हे मासा[१] । आकारान्तः पुंलिङ्ग[१] सोमपाशब्दः । सोमपाः सोमपौ सोमपाः । अधातोरिति विशेषणाद्धेर्लोपो नास्ति । हे सोमपाः । सोमपाम् सोमपौ । बहुवचने सोमपा अस् इति स्थिते ॥ २९ ॥

आतो धातोर्लोप ॥ ३० ॥

धातुसम्बन्धिन आकारस्य लोपो भवति शसादौ स्वरे परे । सोमपः । सोमपा सोमपाभ्याम् सोमपाभिः । सोमपे सोमपाभ्याम् सोमपाभ्यः । सोमपः सोमपाभ्याम् सोमपाभ्यः । सोमपः सोमपोः सोमपाम् । सोमपि सोमपोः सोमपासु । एवं कीलालपाशङ्खध्माप्रभृतयः ॥ ३० ॥ इकारान्तः पुंलिङ्गो हरिशब्दः । प्रथमैकवचने हरिः ॥

औ यू ॥ ३१ ॥

इकारान्तादुकारान्ताच्च परऔ यूत्वं आपद्यते । ई ऊ भवत[१] । हरी ॥ ३१ ॥

ए ओ जसि ॥ ३२ ॥

इकारान्तस्य उकारान्तस्य च जसि परे एकार ओकारश्च भवति । हरय ॥ ३२ ॥

---

१ इकारान्तात्पर इत्य उकारन्तात्पर ऊत्य च ।

घौ ॥ ३३ ॥

इकारान्तस्य उकारान्तस्य च घिविषये एकार ओकारश्च भवति। हे हरे। 'समानाच्छेर्लोपोऽधातोः' हे हरी हे हरयः । हरिम् हरी हरीन् ॥ ३३ ॥

टा नाऽस्त्रियाम् ॥ ३४ ॥

इकारान्तादुकारान्ताच्च परष्टा ना भवत्यस्त्रियाम् । हरिणा हरिभ्याम् हरिभिः । हरि ङे इति स्थिते ॥ ३४ ॥

ङिति ॥ ३५ ॥

इकारान्तस्य उकारान्तस्य च ङिति परे एकार ओकारश्च भवति । हरये हरिभ्याम् हरिभ्यः । हरि ङसि इति स्थिते ॥ ३५ ॥

ङसिङसोरस्य ॥ ३६ ॥

एदोद्भ्यां परस्य ङसिङसोरकारस्य लोपो भवति। हरेः । हरिभ्याम् । हरिभ्यः । हरेः हर्योः हरीणाम् । हरि ङि इति स्थिते ॥ ३६ ॥

ङेरौ ङित् ॥ ३७ ॥

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौ भवति स च ङित् ॥३७॥

ङिति टेः ॥ ३८ ॥

ङिति परे टेर्लोपो भवति । हरौ हर्योः हरिषु ।
[illegible] पंलिङ्गा एतैरेव [illegible]

सिध्यन्ति । उकारान्ताश्च विष्णुवायुभानुप्रभृतय एतैरेव सूत्रैः सिध्यन्ति । भानुः भानू भानवः । भानुम् भानू भानून् । भानुना भानुभ्याम् भानुभिः । भानवे भानुभ्याम् भानुभ्यः । भानो भानुभ्याम् भानुभ्यः । भानो भान्वोः भानूनाम् । भानौ भान्वोः भानुषु । हे भानो इत्यादि ॥ ३८ ॥ सखिशब्दस्य भेदः ॥

सेर्डाऽघे ॥ ३९ ॥

सखिशब्दात्परस्य सेरघेर्डा भवति स च डित् । डित्त्वाट्टिलोपः । सखा । अघेरिति विशेषणादेकारो घिविषये । हे सखे ॥ ३९ ॥

ऐ सख्यु ॥ ४० ॥

सखिशब्दस्यैकारो भवति पञ्चसु परेषु । षष्ठीनिर्दिष्टस्यादेशस्तदन्तस्य ज्ञेयः ॥ ४० ॥

द्विवचनस्यावा छन्दसि ॥ ४१ ॥

द्विवचनस्य औ आ भवति वेदे । सखायौ सखाया सखायः । सखायम् सखायौ सखीन् । सखि टा इति स्थिते ॥ ४१ ॥

सखिपत्योरीक् ॥ ४२ ॥

सखिपतिशब्दयोरीगागमो भवति टाङेङिषु परतः । दीर्घत्वाच्च ना । सख्या । 'आगमजमनि-

त्यम्' इति न्यायात् । सखिना पतिना सखिभ्याम् सखिभिः । सख्ये सखिभ्याम् सखिभ्यः । सखि ङसि इति स्थिते ॥ ४२ ॥

ऋङ्के ॥ ४३ ॥

सखिपतिशब्दयोर्ऋगागमो भवति ङसिङसोर-कारे स च ङित् । सख्यृ अस् इति स्थिते ॥ ४३ ॥

ऋतो ङ उः ॥ ४४ ॥

ऋकारान्तात्परस्य ङसिङसोरकारस्य उकारो भवति स च ङित् । सख्युः सखिभ्याम् सखिभ्य । सख्यु सख्योः सखीनाम् । सप्तम्येकवचने कृते । 'ङेरौ ङित्' इत्यौकारे कृते सखिपतिशब्दयोरीगाग-मो भवति । सख्यौ सख्योः सखिषु । पतिशब्दस्य प्रथमाद्वितीययोर्हरिशब्दवत्प्रक्रिया । तृतीयादौ तु सखिशब्दवत् । पतिः पती पतयः इत्यादि ॥ (पति-रसमास एव सखिवद्वक्तव्यः*) । ततः समासा-न्तस्य नादयो भवन्ति । प्रजापतिना प्रजापतये इत्यादि ॥ ४४ ॥ द्विशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः । द्वि औ इति स्थिते ॥

त्यदादेष्टेर स्यादौ ॥ ४५ ॥

त्यदादेष्टेरकारो भवति स्यादौ परे । द्वौ द्वौ द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् । द्वयोः द्वयोः । त्य-दीन घेरभावः । त्रिशब्दो नित्य बहुवचनान्तः ।

त्रि जस् इति स्थिते । 'ए ओ असि इत्येकारे कृते अयादेश । त्रय त्रीन् त्रिभिः त्रिभ्यः त्रिभ्य ॥४५॥

त्रेरयङ् ॥ ४६ ॥

त्रिशब्दस्यायङनदेशो भवति नामि परे ॥ (ङि-दन्तस्य वक्तव्यः*) । त्रयाणाम् त्रिषु । कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्त । कति जस् इति स्थिते ॥ (क-तिशब्दाज्जश्शसोर्लुग्वक्तव्यः*) । इति जश्शसो-र्लुक् । लुकि न तन्निमित्तम् । कति कति कतिभि कतिभ्य कतिभ्यः कतीनाम् कतिषु । त्रिषु लि-ङ्गेषु चाय सरूपः ॥ ४६ ॥ ईकारान्त पुलिङ्ग सुश्रीशब्द । सुश्री । सुश्री औ इति स्थिते ॥

य्वोर्धातोरियुवौ स्वरे ॥ ४७ ॥

धातोरीकारोकारयोरियुवौ भवतः स्वरे परे । सुश्रियौ सुश्रियः । हे सुश्रीः हे सुश्रियौ हे सुश्रियः । सुश्रियम् सुश्रियौ सुश्रियः । सुश्रिया सुश्रीभ्याम् सुश्रीभिः । सुश्रिये सुश्रीभ्याम् सुश्रीभ्यः । सुश्रिय सुश्रीभ्याम् सुश्रीभ्य । सुश्रियः सुश्रियोः सुश्रि-याम् । सुश्रियि सुश्रियो सुश्रीषु । तथैव सुधी-शब्द । सुधीः सुधियौ इत्यादि । उकारान्तः पुलिङ्ग स्वयंभूशब्द । स्वयंभूः स्वयभुवौ स्वयंभुवः ।

---

१ 'सो न पुंस' । २ सुष्ठु ध्यायतीति सुधी । ३ स्वयं भवतीति स्वयभू ।

स्वयमुवम् स्वयमुवौ स्वयंभुवः । स्वयमुवा स्वयभूम्याम् । स्वयंभूमिः । स्वयंभुवे स्वयंभूभ्याम् स्वयभूभ्यः । स्वयभुवः स्वयभूभ्याम् स्वयभूभ्यः । स्वयंभुव स्वयंभुवोः स्वयभुवाम् । स्वयंभुवि स्वयंभुवोः स्वयभूषु ॥ ४७ ॥ सेनानीशब्दस्याविशेषो हसादौ । स्वरादौ तु विशेषः । सेनानीः । सेनानी औ इति स्थिते ।

वर्ये वा ॥ ४८ ॥

धातोरवयवसंयोगः पूर्वो यस्मादीकारादूकाराच्चास्ति तदन्तस्यानेकस्वरस्य कारकाव्ययपूर्वस्यैकस्वरस्य च धातोरीकारस्य ऊकारस्य च यकारवकारौ भवतः स्वरे परे। वर्षाभूपुनर्भूव्यतिरिक्तभूशब्दसुधीशब्दौ वर्जयित्वा । वाग्रहणादियं विवक्षा । सेनानीः सेनान्यौ सेनान्यः । हे सेनानीः हे सेनान्यौ हे सेनान्यः । सेनान्यम् सेनान्यौ सेनान्यः । सेनान्या सेनानीभ्याम् सेनानीभिः । सेनान्ये सेनानीभ्याम् सेनानीभ्यः। सेनान्यः सेनानीभ्याम् सेनानीभ्यः । सेनान्य सेनान्योः॥ (सेनान्यादीना वामो नुट् वक्तव्यः*) । सेनान्याम् सेनानीनाम् ॥ ४८ ॥

आम् ङे ॥ ४९ ॥

आवन्तादीबन्तान्नीशब्दाच्चोत्तरस्य ङेरामादेशो

---

१ सेनां नयतीति सेनानीरधिप ।

भवति । सेनान्याम् सेनान्योः सेनानीषु । वातप्रमीशब्दस्य भेदः । वातप्रमीः वातप्रम्यौ वातप्रम्यः । हे वातप्रमीः हे वातप्रम्यौ हे वातप्रम्यः । वातप्रमीम् वातप्रम्यौ वातप्रमीन् । वातप्रम्या वातप्रमीभ्याम् वातप्रमीभिः । वातप्रम्ये वातप्रमीभ्याम् वातप्रमीभ्यः । वातप्रम्यः वातप्रमीभ्याम् वातप्रमीभ्यः । वातप्रम्य वातप्रम्योः । आमि नुट् । वातप्रमीनाम् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । वातप्रमी वातप्रम्योः वातप्रमीषु । एवं ग्रामणीप्रभृतयः सेनानीवत् । ऊकारान्ताश्च यवक्रूप्रभृतयः ॥ ४९ ॥ ऋकारान्तः पुल्लिङ्गः पितृशब्दः ।

सेरा ॥ ५० ॥

ऋकारान्तात्परस्य सेरा भवति स च डित् । डित्त्वाट्टिलोपः । पिता ॥ ५० ॥

अर् पञ्चसु ॥ ५१ ॥

ऋकारोऽर्भवति पञ्चसु परेषु स च डित् । पितरौ पितरः ॥ ५१ ॥

घेरर् ॥ ५२ ॥

ऋकारान्तात्परस्य घेरर् भवति स च डित् । हे पितः हे पितरौ हे पितरः । पितरम् पितरौ पितॄन् । पित्रा पितृभ्याम् पितृभिः । पित्रे पितृभ्याम् पितृभ्यः । पितुः पितृभ्याम् पितृभ्यः । पितुः पित्रोः पितृणाम् ॥ ५२ ॥

ङौ ॥ ५३ ॥

ऋकारस्यार्भवति ङौ परे । पितरि पित्रोः पितृषु । एव जामातृभ्रात्रादय । एव नृशब्दः । ना नरौ नरः । नरम् नरौ नॄन् । त्रा नृभ्याम् नृभिः । त्रे नृभ्याम् नृभ्यः । नुः नृभ्याम् नृभ्यः । नुः त्रोः ॥ ५३ ॥

नुर्वा नामि दीर्घ ॥ ५४ ॥

नृशब्दस्य नामि परे वा दीर्घो भवति । नृणाम् नॄणाम् । नरि त्रो नृषु । हे नः हे नरौ हे नरः । ॥ ५४ ॥ कर्तृशब्दस्य पञ्चसु विशेषः ।

स्तुरार् ॥ ५५ ॥

सकारतृप्रत्ययसंबन्धिन ऋकारस्यार्भवति पञ्चसु परेषु । कर्तृ सि इति स्थिते । यदादेशस्तद्वद्भवति । 'सेरा' । ङिस्याट्टेर्लोपः । कर्ता कर्तारौ कर्तारः । हे कर्त हे कर्तारौ हे कर्तारः । कर्तारम् कर्तारौ कर्तॄन् । कर्त्रा कर्तृभ्याम् कर्तृभि । कर्त्रे कर्तृभ्याम् कर्तृभ्यः । कर्तुः कर्तृभ्याम् कर्तृभ्य । कर्तुः कर्त्रोः कर्तॄणाम् । कर्तरि कर्त्रो कर्तृषु । एव नप्तृहोतृप्रशास्तृप्रभृतयः । उकारान्तस्य क्रोष्टुशब्दस्य भेदः ॥

(उकारान्तस्यापि क्रोष्टुशब्दस्य पञ्चस्वपि तृप्रत्य- ... रूपं ... *) क्रोष्टा क्रोष्टारौ क्रो-

ष्टारः । क्रोष्टारम् क्रोष्टारौ । शसि परे तृप्रत्ययवज्ञावाभावात् । क्रोष्टून् ॥ (तृतीयादौ तृप्रत्ययान्तता वा वक्तव्या* । क्रोष्ट्रा-क्रोष्टुना क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभिः । क्रोष्ट्रे-क्रोष्टवे क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभ्य । क्रोष्टुः-क्रोष्टो क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभ्यः । क्रोष्टुः क्रोष्टोः क्रोष्ट्रोः-क्रोष्ट्वोः क्रोष्टूनाम् । नुडागमे कृते ह्रस्वादित्वात्तृज्वद्भावो नास्ति । कृताकृतप्रसङ्गी यो विधि स नित्यः । नित्यानित्ययोर्मध्ये नित्यविधिर्बलवान् । क्रोष्टरि क्रोष्टौ क्रोष्ट्रोः क्रोष्ट्वोः क्रोष्टुषु । ऋकारान्ता लृकारान्ता एकारान्ताश्चाप्रसिद्धा । ऐकारान्तः पुल्लिङ्गः सुरैशब्द ॥ ५५ ॥

रै स्मि ॥ ५६ ॥

रैशब्दस्याकारादेशो भवति सकारभकारादौ विभक्तौ परत । सुरा । स्वरादौ सर्वत्रायादेश । सुरायौ सुरायः । हे सुराः हे सुरायौ हे सुराय । सुरायम् सुरायौ सुराय । सुराया सुराभ्याम् सुराभिरित्यादि ॥ ५६ ॥ ओकारान्त पुल्लिङ्गो गोशब्दः ।

---

१ तृप्रत्ययेन तुल्य तृप्रत्ययवत् तस्य भावस्तस्याभाव । २ तृतीया आदिर्यस्य । ३ य प्रसङ्ग कृतेऽपि भवति अकृतेऽपि भवति ।

औरौ ॥ ५७ ॥

ओकारस्यौकारादेशो भवति पञ्चसु परेषु । गौः गावौ गावः । हे गौः हे गावौ हे गावः ॥ ५७ ॥

आऽम् शसि ॥ ५८ ॥

ओकारस्यात्व भवति अमि शसि च परे । गाम् गावौ गाः । गवा गोभ्याम् गोभिः । गवे गोभ्याम् गोभ्यः । ङस्येत्यकारलोपः । गोः गोभ्याम् गोभ्यः । गोः गवोः गवाम् ॥ ५८ ॥

श्रुतौ गोराम ॥ ५९ ॥

श्रुतौ गोशब्दात्परस्यामो नुडागमो भवति । गोनाम् । गवि गवोः गोषु । एवं सुद्योशब्दः । औकारान्तः पुल्लिङ्गो ग्लौशब्दस्तस्य हसादावविशेष स्वरादावावादेशः । ग्लौः ग्लावौ ग्लावः । ग्लाव ग्लावौ ग्लावः । ग्लावा ग्लौभ्यामित्यादि ॥ ५९ ॥

इति स्वरान्ताः पुंलिङ्गाः ।

अथ स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

तत्रामन्तो गङ्गाशब्दः ।

आवत स्त्रियाम् ॥ १ ॥

अकारान्तान्नाम्नः स्त्रियां वर्तमानादाप्प्रत्ययो भवति ॥ १ ॥

१ ग्लौशब्दः 'ग्लौर्मृगाङ्कः कलानिधिः' इत्यमरः ।

आप ॥ २ ॥

आबन्तात्परस्य सेर्लोपो भवति । गङ्गा ॥ २ ॥

औरी ॥ ३ ॥

आबन्तात्पर औ ईकारमापद्यते । 'अ इ ए' । गङ्गे गङ्गाः ॥ ३ ॥

घिरि ॥ ४ ॥

आबन्तात्परो घिरिर्भवति । हे गङ्गे हे गङ्गे हे गङ्गाः ॥ ४ ॥

अम्बादीनां घौ ह्रस्व ॥ ५ ॥

अम्बादीना घौ परे ह्रस्वो भवति । हे अम्ब हे अक्क हे अल्ल ॥ (असंयुक्तानां डलकवतीना प्रतिषेधो वाच्यः *) । हे अम्बाडे हे अम्बाले हे अम्बिके इत्यादौ ह्रस्वो न भवति । गङ्गाम् गङ्गे । पुंस इति विशेषणात् स्त्रिया शसि सकारस्य नकारो न भवति । गङ्गाः ॥ ५ ॥

टौसोरे ॥ ६ ॥

आबन्तस्य टौसोः परयोरेत्वं भवति । अयादेश । गङ्गया गङ्गाभ्याम् गङ्गाभिः ॥ ६ ॥

ङित्तां यट् ॥ ७ ॥

आबन्तात्परेषा ङे ङसि ङस् ङि इत्येतेषा यडागमो भवति । टकारः स्थाननियमार्थ । गङ्गायै गङ्गाभ्याम् गङ्गाभ्यः । गङ्गायाः गङ्गाभ्याम् ग-

ङाम्य । गङ्गाया' गङ्गयो॰ ॥ (आवन्तादीवन्तादामो नुट् वक्तव्यः *) । गङ्गानाम् । 'आम् ङेः' इत्याम् । गङ्गायाम् गङ्गयोः गङ्गासु । एवं श्रद्धामेधाशालामालाहेलादोलाप्रभृतय' । सर्वा सर्वे सर्वाः । हे सर्वे । सर्वाम् सर्वे सर्वाः । सर्वया सर्वाभ्याम् सर्वाभि' । सर्वादीना तु ङित्सु विशेष' ॥ ७ ॥

यटोऽच्च ॥ ८ ॥

आवन्तात्सर्वादेः परस्य यटः सुडागमो भवति पूर्वस्य चापोऽकारो भवति । सर्वस्यै सर्वाभ्याम् सर्वाभ्य । सर्वस्या सर्वाभ्याम् सर्वाभ्य । सर्वस्याः सर्वयोः सर्वासाम् । सर्वस्याम् सर्वयोः सर्वासु । आकारान्तो जराशब्द' ॥ (जराया' स्वरादौ जरस् वा वक्तव्य *) । जरा जरसौ जरे जरसः जरा' । जरसम् जराम् जरसौ जरे जरसः जरा' । जरसा जरया जराभ्याम् जराभिः । जरसे जरायै जराभ्याम् जराभ्यः । जरसः जरायाः जराभ्याम् जराभ्य' । जरसः जरायाः जरसोः जरयो' जरसाम् जराणाम् । जरसि जरायाम् जरसोः जरयोः जरासु । हे जरे हे जरसौ हे जरे हे जरस' हे जरा' । इकारान्तः स्त्रीलिङ्गो बुद्धिशब्दः । तस्य च प्रथमाद्वितीययोः हरिशब्दवत्प्रक्रिया । बुद्धिः बुद्धी बुद्धय' । बुद्धिम् बुद्धी बुद्धीः । स्त्रीत्वाच्छसो नत्वाभावः । बुद्ध्या बुद्धिभ्याम् बुद्धिभिः ॥ ८ ॥

इदन्त्याम् ॥ ९ ॥

स्त्रियां वर्तमानाभ्यामिकारोकाराभ्यां परेषां ङिन्तां वचनानां वा अडागमो भवति । बुद्ध्यै बुद्धये बुद्धिभ्याम् बुद्धिभ्यः । बुद्ध्याः बुद्धेः बुद्धिभ्याम् बुद्धिभ्यः । बुद्ध्याः बुद्धेः बुद्ध्योः बुद्धीनाम् ॥ ९ ॥

स्त्रियां य्वोः ॥ १० ॥

इश्च उश्च यू तस्मादिवर्णान्तादुवर्णान्ताच्च परस्य ङेरामादेशो भवति । बुद्ध्याम् । अडागमाभावे आमोऽप्यभावः । बुद्धौ बुद्ध्योः बुद्धिषु । एवं मतिभूतिविभूतिधृतिरुचिकृतिसिद्धिशान्तिक्षान्तिभ्रान्त्यालिशक्तिप्रभृतयः । एवं धेनुतनुरज्जुप्रभृतयः स्त्रीलिङ्गा उकारान्ता एतैरेव सूत्रैः सिद्ध्यन्ति । धेनुः धेनू धेनवः । हे धेनो हे धेनू धेनवः । धेनुम् धेनू धेनूः । धेन्वा धेनुभ्याम् धेनुभिः । धेन्वै धेनवे धेनुभ्याम् धेनुभ्यः । धेन्वाः धेनोः धेनुभ्याम् धेनुभ्यः । धेन्वाः धेनोः धेन्वोः धेनूनाम् । धेन्वाम् धेनौ धेन्वोः धेनुषु ॥ १० ॥ ईकारान्तः स्त्रीलिङ्गो नदीशब्दः ।

हसेपः सेर्लोपः ॥ ११ ॥

हसान्तादीवन्ताच्च परस्य सेर्लोपो भवति । नदी नद्यौ नद्यः ॥ ११ ॥

धौ ह्रस्वः ॥ १२ ॥

इवर्णोवर्णयोरधातोः स्त्रिया धौ परे ह्रस्वो भवति। हे नदि हे नद्यौ हे नद्य । नदीम् नद्यौ नदीः । नद्या नदीभ्याम् नदीभिः ॥ १२ ॥

ङित्तामट् ॥ १३ ॥

स्त्रियामीकारान्तादूकारान्ताच्च परेषां ङित्तां व-चनानामडागमो भवति । नद्यै नदीभ्याम् नदीभ्यः । नद्याः नदीभ्याम् नदीभ्यः । नद्याः नद्योः नदीनाम् । नद्याम् नद्योः नदीषु । एवं गौरीसरस्वतीब्राह्मणीकुमारीकिशोरीकलमीपार्वतीभवानीप्रभृतयः । लक्ष्मीशब्दस्येवन्तत्वाभावात्सेर्लोपो नास्ति । लक्ष्मीः लक्ष्म्यौ लक्ष्म्यः । हे लक्ष्मि । शेषं नदीवत् । स्त्रीशब्दस्य ईवन्तत्वात्सेर्लोपोऽस्ति । स्त्री ॥ १३ ॥

स्त्रीभ्रुवो ॥ १४ ॥

स्त्रीशब्दस्य भ्रूशब्दस्य च इयुवौ भवतः स्वरे परे । स्त्रियौ स्त्रियः । हे स्त्रि हे स्त्रियौ हे स्त्रियः ॥ १४ ॥

वाऽम्शसि ॥ १५ ॥

स्त्रीशब्दस्य अमि शसि च परे वा इयादेशो भवति । स्त्रियम् स्त्रीम् स्त्रियौ स्त्रियः स्त्रीः । स्त्रिया स्त्रीभ्याम् स्त्रीभिः । स्त्रीषु । शेषं नदीवत् । श्रीः

१ 'अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मीधीह्रीश्रीणामुणादितः । अपि स्त्री-[illegible] । सिलोपो न कदाचन ॥'

श्रियौ श्रियः । हे श्रीः । श्रियम् श्रियौ श्रियः । श्रिया श्रीभ्याम् श्रीभिः ॥ १५ ॥

वेयुवः ॥ १६ ॥

इयुवन्तात्स्त्रिया वर्तमानात् ङिता वचनाना वाऽडागमो भवति । स्त्रियास्तु नित्यम् । श्रियै श्रिये श्रीभ्याम् श्रीभ्यः । श्रियाः श्रियः श्रीभ्याम् श्रीभ्यः । श्रियाः श्रियः श्रियोः । (श्र्यादीनां वामो नुड्वक्तव्यः*) । श्रियाम् श्रीणाम् । ङौ परेऽडागमाभावे आमोऽप्यभावः । श्रियाम् श्रियि श्रियोः श्रीषु । एवं ह्रीधीप्रभृतयोऽप्यनीबन्ताः । एवं भ्रूशब्दो स्नूशब्दश्च । वधूकरभोरूकच्छूकण्डूजम्ब्वादीना नदीशब्दवद्रूपं ज्ञेयम् । वधूः वध्वौ वध्वः । हे वधु । वधूम् वध्वौ वधूः । जम्बूः जम्ब्वौ जम्ब्वः । हे जम्बु हे जम्ब्वौ हे जम्ब्वः । ऋकारान्तो मातृशब्दः । माता मातरौ मातरः । मातरम् मातरौ मातॄः । 'शसि' इति दीर्घत्वम् । शेषं पितृवत् । स्वसृशब्दः कर्तृवत् । नत्वाभावो विशेषः । रैशब्दः सुरैशब्दवत् । नौशब्दो ग्लौशब्दवत् । गोशब्दस्तु पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इति स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

---

* श्रीभ्रीसेनानीग्रामण्यादयः परिगणिताः ।

अथ स्वरान्ता नपुंसकलिङ्गाः ।

अकारान्तो नपुंसकः कुलशब्दः । तस्य प्रथमाद्वितीयैकवचने ।

अतोऽम् ॥ १ ॥

अकारान्तान्नपुंसकलिङ्गात्परयोः स्यमोरम् भवति अधौ । अमो ग्रहणं लुग्व्यावृत्त्यर्थम् । 'अमृशसोरस्य' इत्यकारलोपः । कुलम् ॥ १ ॥

ईमौ ॥ २ ॥

नपुंसकलिङ्गात्परः औ ईकारमापद्यते । कुले ॥२॥

जश्शसोः शि ॥ ३ ॥

नपुंसकलिङ्गात्परयोर्जश्शसोः शिर्भवति । शकारः सर्वादेशार्थः ॥ (गुरुः शिश्च सर्वस्य वक्तव्यः *) ॥ ३ ॥

नुमयम ॥ ४ ॥

नपुंसकस्य नुमागमो भवति शौ परे यमप्रत्याहारान्तस्य न भवति । (मिदन्त्यात्स्वरात्परो वक्तव्यः *) ॥ ४ ॥

नोपधाया ॥ ५ ॥

नान्तस्योपधाया दीर्घो भवति शौ परे धिवर्जि-

---

१ षष्ठीनिर्दिष्टस्येत्यस्यापवादः । २ नुम् इत्यत्र उकारः । मकारः स्थाननियमार्थः ।

तेषु पञ्चसु नामि च नत्वीति । कुलानि । हे कुल हे कुले हे कुलानि । पुनरपि कुल कुले कुलानि । शेष देववत् । एव मूलफलपत्रपुष्पकुण्डकुटुम्बादय ॥ ५ ॥ सर्वादीना यकारान्तानामन्यादिपञ्चशब्दव्यतिरिक्ताना प्रथमाद्वितीययो कुलशब्दवत्प्रक्रिया । सर्वं सर्वे सर्वाणि । । शेषं पूर्ववत् । अन्यादेर्विशेषमाह ।

स्त्वन्यादे ॥ ६ ॥

अन्यादेर्गणात्परयो स्यमोः स्तुर्भवति । अकारः शित्कार्यार्थः । उकार उच्चारणार्थः ॥ ६ ॥

वाऽवसाने ॥ ७ ॥

अवसाने वर्तमानाना झसानां जबा भवन्ति चपा वा । अन्यत् अन्यद् अन्ये अन्यानि । पुनरपि । अन्यत् अन्यद् अन्ये अन्यानि । अन्यतरत् अन्यतरद् अन्यतरे अन्यतराणि २। इतरत् इतरद् इतरे इतराणि २। कतरत् कतरद् कतरे कतराणि २। कतमत् कतमद् कतमे कतमानि २। शेषं सर्वशब्दवत् । एते स्यान्यादयः ॥ ७ ॥ इकारान्तोऽस्थिशब्दः ।

नपुंसकात्स्यमोर्लुक् ॥ ८ ॥

नपुंसकलिङ्गात्परयो स्यमोर्लुग्भवति । अस्थि ८

१ अस्मिन्पक्षे दत्यमपि भवति ।

य्वृणाम् ॥ ९ ॥

इश्च उश्च ऋश्च य्व' तेषां य्वृणाम् ॥ (नपुंसके धौ वा गुणो वक्तव्यः*) । हे अस्थि हे अस्थे हे अस्थिनी हे अस्थीनि ॥ ९ ॥ उक्त हि–'संबोधने तूशनसस्त्रिरूप सान्त तथा नान्तमथाप्यदन्तम् । माध्यन्दिनिर्वष्टि गुण त्विगन्ते नपुसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः ॥ १ ॥'

नामिन स्वरे ॥ १० ॥

नाम्यन्तस्य नपुसकलिङ्गस्य नुमागमो भवति । स्वरे परे । 'ईमौ' अस्थिनी अस्थीनि १० ॥

अच्चास्थ्यां टादौ ॥ ११ ॥

अस्थ्यादीना नुमागमो भवति ईकारस्य चाकारो भवति टादौ स्वरे परे ॥ ११ ॥

अल्लोप स्वरेऽम्वयुक्तान्छसादौ ॥ १२ ॥

नान्तस्योपधाया अकारस्य लोपो भवति शसादौ स्वरे परे मकारवकारान्तसयोगादुत्तरस्य न भवति । अस्थ्ना अस्थिभ्याम् अस्थिभि' । अस्थ्ने अस्थिभ्याम् अस्थिभ्य । अस्थ्नः अस्थिभ्याम् अस्थिभ्य । अस्थ्नः अस्थ्नो अस्थ्नाम् ॥ १२ ॥

वेङ्यो ॥ १३ ॥

नान्तस्य नाम्न ईङ्योः परयोर्वा अकारस्य लोपो व[ ] । अस्थ्नि अस्थनि । एव दधिसक्थिअक्षि-

शब्दाः । दध्ना दधिभ्याम् दधिभिः । सक्थि सक्थिनी सक्थीनि २ ॥ सक्थ्ना सक्थिभ्याम् सक्थिभिः । अक्ष्णा अक्षिभ्याम् अक्षिभिः । वारि वारिणी वारीणि । इति पूर्ववत्प्रक्रिया ॥ १३ ॥

नपुंसकस्य ह्रस्वः ॥ १४ ॥

नपुंसकस्य ह्रस्वो भवति । 'नपुंसकात्स्यमोर्लुक्' ग्रामणि । 'नामिनः स्वरे' इति नुम् । 'ईमौ' । ग्रामणिनी ग्रामणीनि । हे ग्रामणे हे ग्रामणि । 'नामिनः स्वरे' 'नोपधायाः' इति दीर्घः ॥ १४ ॥

टादावुक्तपुंस्कं पुंवद्वा ॥ १५ ॥

उक्तपुंस्कं नाम्यन्तं नपुंसकलिङ्गं टादौ स्वरे परे पुंवद्वा भवति । नामिनः स्वरे । ग्रामण्या ग्रामणिना ग्रामणिभ्याम् ग्रामणिभिः । ग्रामण्ये ग्रामणिने ग्रामणिभ्याम् ग्रामणिभ्यः । ग्रामण्यः ग्रामणिनः ग्रामणिभ्याम् ग्रामणिभ्यः । ग्रामण्यः ग्रामणिनः ग्रामण्योः ग्रामणिनोः ग्रामण्याम् । 'नुमन्तस्यामि दीर्घः' 'नामिनः स्वरे' ग्रामणीनाम् । 'आम् ङेः' । ग्रामण्याम् ग्रामणिनि ग्रामण्योः ग्रामणिनोः ग्रामणिषु । हे ग्रामणि हे ग्रामणिनी

---

१ ग्रामणि कुलम् । २ स्वरादौ चेत् । ३ उक्तः पुमाननेनेत्युक्तपुंस्कम् । ४ 'एक एव हि यः शब्दस्त्रिषु लिङ्गेषु जायते । एकमेवार्थमाख्याति उक्तपुंस्कं तदुच्यते ॥' इति ।

हे ग्रामणीनि । 'अतोम्' । सोमपम् सोमपे सोम पानि २ । सोमपेन सोमपाभ्याम् सोमपैः । सोमपाय सोमपाभ्याम् सोमपेभ्यः । इति पूर्ववत् । उकारान्तो मधुशब्द । 'नपुंसकात्स्यमोर्लुक्' । मधु । 'नामिनः स्वरे' इति नुमागमः । मधुनी 'जश्शसोः शि' । 'नोपधाया' इति दीर्घ । मधूनि । पुनरपि । मधु मधुनी मधूनि । 'नामिन स्वरे' । मधुना मधुभ्याम् मधुभिः । पीलु पीलुनी पीलूनि । पीलुने । ऋकारान्तः कर्तृशब्द । 'नपुंसकात्स्यमोर्लुक्' । कर्तृ । 'नामिनः स्वरे' । 'रवर्णो णोऽनन्ते' । कर्तृणी कर्तृणि २ । 'ऋरम्' । कर्त्रा कर्तृणा कर्तृभ्याम् कर्तृभिः । कर्त्रे कर्तृणे कर्तृभ्याम् कर्तृभ्य । 'ऋतो ङ उः' स च ङित् । 'ङिति टेः' । कर्तुः कर्तृणः कर्तृभ्याम् कर्तृभ्यः । कर्तु कर्तृणः कर्त्रोः कर्तृणो कर्तृणाम् । कर्तरि कर्तृणि कर्त्रोः कर्तृणो कर्तृषु । हे कर्तृ हे कर्तृणी हे कर्तृणि । ऐकारान्तः अतिरि-शब्द । रायमतिक्रान्तमतिरि कुलम् । नावमति-क्रान्तमतिनु जलम् । ओकारान्त उपगुशब्द । उप गता गावो यस्येति तदुपगु । उपगु उपगुनी उपगू-नि । औकारान्तो नौशब्दः । नावमतिक्रान्तं यस्मिं

---

१ यस्मि सोमेनेदं तत्पुरुषम् । २ 'पीलुर्वृक्ष फलं पीलु पीलुने न तु पीलवे । वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं तज्जन्ये तत्फले पुन ॥' इति ।

तदतिनु । अतिनु अतिनुनी अतिनूनि ॥ १५ ॥
इति स्वरान्ता नपुसकलिङ्गाः ॥

अथ हसान्ता' पुलिङ्गा ।

तत्र हकारान्त पुंलिङ्गोऽनडुह्शब्द' । नामसञ्ज्ञाया स्यादय । (पञ्चस्वडुह आमागमो वक्तव्यः *) ॥

सावनडुह ॥ १ ॥

अनडुह्शब्दस्य सौ परे नुमागमो भयति ॥ १॥

सयोगान्तस्य लोप ॥ २ ॥

संयोगान्तस्य लोपो भवति रसे पदान्ते च । रेफादुत्तरस्य सकारस्यैव लोपो नान्यस्य ॥ २ ॥

हसेप सेर्लोप ॥ ३ ॥

हसान्तादीबन्ताच्च परस्य सेर्लोपो भवति । 'उवम्' इति वत्वम् लोपविधिसामर्थ्याश्च दत्वम् । अनड्वान् अनड्वाहौ अनड्वाहः। अनड्वाहम् अनड्वाहौ अनडुह । अनडुहा अनडुद्भ्याम् अनडुद्भिः ॥ ३॥

वसां रसे ॥ ४ ॥

वसुस्रंसुध्वसुभ्रंसुअनडुह् इत्येतेषा रसे पदान्ते च दत्व भवति । अनडुहे अनडुद्भ्याम् अनडुद्भ्य । अनडुहः अनडुद्भ्याम् अनडुद्भ्य । अनडुह अनडुहो अनडुहाम्। अनडुहि अनडुहो । 'खसे चपा झसानाम्' अनडुत्सु ॥ ४ ॥

हो ढ ॥ ९ ॥

धातोर्हकारस्य ढत्वं भवति झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च। 'वाऽवसाने'। मधुलिट् मधुलिड् मधुलिहौ मधुलिहः। हे मधुलिट् हे मधुलिड् हे मधुलिहौ हे मधुलिह। मधुलिहम् मधुलिहौ मधुलिहः। मधुलिहा मधुलिड्भ्याम्। मधुलिड्भिः ॥ ९ ॥ तुरासह्शब्दस्य भेदः।

सहे षः साढि ॥ १० ॥

साढिरूपे सति सहेर्धातोः सकारस्य षकारादेशो भवति। तुराषाट् तुराषाड् इत्यादि। द्रुह्शब्दस्य भेदः ॥ १० ॥

द्रुहादीनां घत्वढत्वे वा ॥ ११ ॥

द्रुहादीनां धातूनां घत्वढत्वे वा भवतः रसे पदान्ते च। मित्रध्रुक् मित्रध्रुग् मित्रध्रुट् मित्रध्रुड् मित्रद्रुहौ मित्रद्रुहः। धावप्येवम्। मित्रद्रुहम् मित्रद्रुहौ मित्रद्रुहः। मित्रद्रुहा। 'झभे जबाः'। मित्रध्रुग्भ्याम् मित्रध्रुड्भ्याम्। मित्रध्रुक्षु मित्रध्रुट्सु। इत्यादि। एवं तत्त्वमुहस्नुहादयः ॥ ११ ॥ रेफान्तश्चतुर्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः।

चतुराम् शौ च ॥ १२ ॥

---

१ इम। २ एवमेव पृतनाषाट् हव्यवाट्-प्रष्टवाट्-भारवाटप्रभृतयः।

चतुरशब्दस्यामागमो भवति पञ्चसु परेषु शौ च । चत्वारः चतुरः चतुर्भिः चतुर्भ्यः ॥ १२ ॥

र संख्यायाः ॥ १३ ॥

रेफान्तसंख्यायाः परस्यामो नुडागमो भवति । णत्वं द्वित्वं च । चतुर्णाम् । चतुर्षु ॥ १३ ॥ नकारान्तो राजन्शब्दः । 'नोपधायाः' इति पञ्चसु दीर्घः ।

नाम्नो नो लोपशधौ ॥ १४ ॥

नाम्नो नकारस्यानागमजस्य लोपश् भवति रसे पदान्ते चाधौ । राजा राजानौ राजानः । हे राजन् हे राजानौ हे राजानः । राजानम् राजानौ । 'अल्लोपः स्वरेऽम्वयुक्तात्छसादौ' । 'स्तो श्चुभिः श्चुः' इति श्चुत्वे नकारस्य ञकारः ॥ १४ ॥

जञोर्ज्ञः ॥ १५ ॥

जकारञकारयोर्योगे ज्ञो भवति । राज्ञः राज्ञा राजभ्याम् राजभिः । राज्ञे राजभ्याम् राजभ्यः । 'वेङ्योः' राज्ञि राजनि राज्ञो राजसु । इत्यादि । एवं यज्वन् आत्मन् ब्रह्मन् प्रभृतयः । यज्वा यज्वानौ

---

१ 'मिदन्त्यात्स्वरात्परो वक्तव्यः' । २ धकारात्परस्मिन्नास्मो नकारस्य लोपश् न भवति । सुष्टु हिनस्ति पापमिति सुहिन् इत्यादौ । ३ योगो नामोभयत्र संबन्ध्यः । ४ 'अग्निः' इत्यस्य प्राप्तमपि 'लोपशि पुनर्न संधिः' इति न भवति ।

यज्वान[१] । यज्वानम् यज्वानौ । 'अम्वयुक्तात्' इति विशेषणादल्लोपो नास्ति । यज्वनः यज्वना इत्यादि । श्वन्युवन्मघवन्शब्दाना पञ्चसु राजन्शब्दवत्प्रक्रिया । शसादौ तु विशेष ॥ १५ ॥

श्वादेर्व उ ॥ १६ ॥

श्वादेर्वकारस्य उत्वं भवति शसादौ स्वरे परेऽतद्धिते ईपि ईकारे च । शुनः । शुना श्वभ्याम् श्वभिः । इत्यादि । युवन्शब्दे यकारस्योत्वे कृते 'सवर्णे दीर्घः सह' । यूनः । यूना युवभ्याम् युवभि । इत्यादि । मघोनः मघोना मघवभ्यामित्यादि । पथिन्शब्दस्य भेद[२] ॥ १६ ॥

इतोऽत्पञ्चसु ॥ १७ ॥

पथ्यादीनामिकारस्याकारादेशो भवति पञ्चसु स्यादिषु परेषु ॥ १७ ॥

थो न्थ् ॥ १८ ॥

पथ्यादीना थकारस्य न्थ्आगमो भवति पञ्चसु स्यादिषु परेषु । पन्थत् सि इति स्थिते ॥ १८ ॥

आ सौ ॥ १९ ॥

पथ्यादीना टेरात्वं भवति सौ परे । पन्था

---

१ अत्रातद्धिते इत्यननुवृत्तावपि 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' इति पाणिनीयसूत्रान्नियामकाद्ज्ञेत्व भवति । तद्धिते तु न ।

२ तकारान्तमघवच्छब्दस्य तु मघवत मघवता मघवद्भ्यामित्यादि भिन्नान्येव रूपाणि ।

वासु ॥ २७ ॥

वा आ आसु इति छेद । अष्टन आसु परासु विभक्तिपु वा टेरात्व भवति । अष्टभि अष्टाभिः । अष्टभ्यः अष्टाभ्यः । अष्टानाम् । अष्टसु अष्टासु ॥ २७ ॥ मकारान्त इदम् शब्द ।

इदमोऽय पुसि ॥ २८ ॥

इदम्शब्दस्य पुंसि विषये अयमादेशो भवति सिसहितस्य । अयम् । द्विवचनादौ 'त्यदादेष्टेर स्यादौ' इत्यकारः । इदम् औ इति स्थिते ॥ २८ ॥

दस्य म ॥ २९ ॥

त्यदादीना दकारस्य मत्वं भवति स्यादौ परे । इमौ इमे । सर्वादित्वात् 'जसी' इतीकारः । त्यदादीना धेरभाव । इमम् इमौ इमान् ॥ २९ ॥

अन टौसो ॥ ३० ॥

इदमोऽनादेशो भवति टौसो परयो । अनेन ॥

स्भ्य ॥ ३१ ॥

इदम सकारे भकारे च परे अकारो भवति । कृत्स्नस्य । 'अभ्दि' इत्यात्वम् । आभ्याम् ॥ ३१ ॥

भिस्भिस् ॥ ३२ ॥

इदमदसोर्भिस् भिसेव भवति न भकारस्याकार । 'एभि बहुत्वे' एभिः । अस्मै आभ्याम्

एभ्य । अस्मात् आभ्याम् एभ्यः । अस्य अनयः एषाम् । अस्मिन् अनयोः एषु । किम्शब्दस्य 'त्य-दादेष्टेर' स्यादौ' इत्याकारे कृते सर्वशब्दवद्रूपम् । कः कौ के । कम् कौ कान् । इत्यादि । धकारान्त-स्तत्त्वबुधशब्दः । तस्य रसे पदान्ते च 'आदिजवा-नाम्' इति भकार' । 'वाऽवसाने' तत्त्वभुत् तत्त्व-भुद् तत्त्वबुधौ तत्त्वबुध । हे तत्त्वभुत् हे तत्त्वभुद् । तत्त्वबुधम् तत्त्वबुधौ तत्त्वबुध । तत्त्वबुधा तत्त्वभु-द्भ्याम् तत्त्वभुद्भिः इत्यादि । एवं मर्मावित् ॥३२॥ जकारान्तः सम्राज्शब्दः ॥

छशपराजादे ष ॥ ३३ ॥

छकारान्तस्य षकारान्तस्य च राज् यज् सृज् मृज् भ्राजादेश्च षकारो भवति धातोर्झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च ॥ ३३ ॥

षो ड ॥ ३४ ॥

षकारस्य डत्वं भवति धातोर्झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च । 'वावसाने' इति टकारो डकारश्च । सम्राट् सम्राड् सम्राजौ सम्राज । सम्राजम् सम्रा-

---

१ पाणिनीये द्वितीयायां टौसोश्च इदम एनादेशो भवति । २ 'इदम प्रत्यक्षभवे समीपतरवर्ति चैतदो रूपम् । अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥' ३ आदिशब्दात् भ्रस्जसृजपरिव्राजां ग्रहणम् । ४ षस्य षविधान डत्वनिषेधार्थम् ।

जौ सम्राजः। सम्राजा सम्राड्भ्याम् सम्राड्भिः। इत्यादि एवं विराजादयः। दकारान्तास्त्यदृतद् यद्एतद्शब्दाः। एतेषां 'त्यदादेष्टेरः स्यादौ' इति सर्वत्राकारे कृते सर्वशब्दवद्रूपं ज्ञेयम् ॥ ३४ ॥

स्तः ॥ ३५ ॥

त्यदादेस्तकारस्य सौ परे सत्व भवति। स्यः स्यौ त्ये। त्यम् त्यौ त्यान्। सः तौ ते। तम् तौ तान्। य यौ ये। यम् यौ यान्। एषः एतौ एते। (एतदोऽन्वादेशे द्वितीयाटौस्स्वेनो वा वक्तव्यः *) उक्तस्य पुनरुक्तिरन्वादेशः। यथानेन व्याकरणमधीत एनं छन्दोऽध्यापय। एतम् एनम् एतौ एनौ एतान् एनान्। एतेन एनेन एताभ्याम् एतैः। एतयो एनयो एतेषाम्। एतस्मिन् एतयोः एनयो एतेषु। छकारान्तस्तत्त्वप्राछ्शब्दः। तत्त्वप्राड् तत्त्वप्राड् तत्त्वप्राछौ तत्त्वप्राछः। इत्यादि। थकारान्तोऽग्निमथ्शब्दः। अग्निमत् अग्निमद् अग्निमथौ अग्निमथ। अग्निमथा अग्निमद्भ्याम् इत्यादि ॥ ३५ ॥

नो लोपः ॥ ३६ ॥

धातोर्हसान्तस्योपधाभूतस्य लोपो भवति ॥ (अञ्चेः पञ्चसु नुम् वक्तव्यः *)। प्रत्यन् प्र इति

१ आदिशब्दादेवं देवेट् विश्वसृट् परिमृट् विभ्राट् तत्त्वसृट् यवसृट्। एव धुतमुट् भनिष् वणिक् भिषक् अभ्रमुट् प्रभृतयो ज्ञात्वा।

स्थिते । 'स्तोः श्चुभिः श्चुः' इति चुत्वेनात्र ञकार । संयोगान्तस्य लोपः ॥ ३६ ॥

चो कु ॥ ३७ ॥

चवर्गस्य कवर्गादेशो भवति धातोर्झसे परे नाम्न्य रसे पदान्ते च यथासङ्ख्येन । प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्चः । प्रत्यञ्चम् प्रत्यञ्चौ ॥ ३८ ॥

अञ्चेरलोपो दीर्घश्च ॥ ३८ ॥

अञ्चेर्धातोरकारस्य लोपो भवति पूर्वस्य च दीर्घः शसादौ स्वरे परे तद्धिते प्रत्यये ईपि ईकारे च । निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः । प्रतीच । प्रतीचा प्रत्यग्याम् प्रत्यग्भि । प्रत्यक्षु । एवं तिर्यच्प्रभृतय । तिर्यङ् तिर्यञ्चौ तिर्यञ्चः । तिर्यञ्चम् तिर्यञ्चौ ॥ ३८ ॥

तिरश्चादय ॥ ३९ ॥

तिरश्चादयो निपात्यन्ते शसादौ स्वरे परे तद्धिते ईपि ईकारे च । तिरश्च । तिरश्चा तिर्यग्भ्या तिर्यग्भिः । तिर्यक्षु । (उदच्शब्दस्य उदीच इति निपात्यते शसादौ स्वरे परे) उदीचः उदीचा । समीचः समीचा । इत्यादि । एवमग्निचित् ॥ ३९ ॥

तकारान्त उकारानुबन्धो महच्छब्द ।

वृतो नुम् ॥ ४० ॥

उकारानुबन्धस्य ऋकारानुबन्धस्य च नुमागमो भवति पुंसि पञ्चसु परेषु ॥ ४० ॥

नृसम्महतो घौ दीर्घः शौ च ॥ ४१ ॥

नृसन्तस्याप्शब्दस्य महच्छब्दस्य च उपधाया दीर्घो भवति पञ्चसु घिवर्जितेषु शौ च परे। महान् महान्तौ महान्तः। हे महन्। महान्तं महान्तौ महतः। महता महद्भ्याम् महद्भिः। इत्यादि ॥ ४१॥ उकारानुबन्धो भवच्छब्द ॥

अत्वसो सौ ॥ ४२ ॥

अत्वन्तस्यासन्तस्य च दीर्घो भवति घिवर्जितेषु सौ च परे। भवान् भवन्तौ भवन्तः। भवन्तम् भवन्तौ भवतः। भवता भवद्भ्याम्। इत्यादि ॥ ऋकारानुबन्धस्य पचतृशब्दस्य नुमागम एव न दीर्घः। पचन् पचन्तौ पचन्तः। इत्यादि। एव ऋकारानुबन्धो भवच्छब्दोऽपि। पठन् पठन्तौ पठन्तः। पठन्तम् पठन्तौ। शकारान्तो विश्शब्द। 'छशषराजादेः षः' इति षत्वम् 'षो ड' इति षकारस्य डत्वं च। 'वाऽवसाने' चपा जबाश्च। विट् विड् विशौ विशः। इत्यादि। षकारान्तः षष्शब्दो नित्य बहुवचनान्तस्त्रिषु सरूप। 'जश्शसोर्लुक्'। षो ड'। षट् षड् षड्भिः षड्भ्य २॥ 'ष्ण' इति नुडागम। षड् नाम् इति स्थिते ४२

ड् णू न ॥ ४३ ॥

षान्तसंख्यासंबन्धिनो डकारस्य णत्वं भवति

नामि परे । 'ष्टुभि' ष्टु' षण्णाम् षट्सु । 'क्वचिदपदान्ते पदान्तताश्रयणीया' ॥ ४३ ॥

दोषां र. ॥ ४४ ॥

दोषसजुषआशिषद्विषप्रभृतीना पकारस्य रेफो भवति रसे पदान्ते च । दो' दोषौ दोष । दोषम् दोषौ । (दोषशब्दस्य शसादौ स्वरे परे नान्तता वा वक्तव्या*)। दोष दोष्ण । दोषा दोष्णा । दोर्भ्याम् दोषभ्याम् इत्यादि । सेजूः सजुषौ सजुष ॥ (सजुषाशिषो रसे पदान्ते च दीर्घो वक्तव्यः *)। सजूर्भ्यामित्यादि ॥ ४४ ॥

पुसोऽसुङ् ॥ ४५ ॥

पुंसशब्दस्य पञ्चसु परेष्वसुङादेशो भवति । ङकारोऽन्त्यादेशार्थः । उकारो नुम्विधानार्थ' ॥४५॥

स्वरे म ॥ ४६ ॥

अनुस्वारस्य मकारो भवति । पुमस् स् इति स्थिते 'धृतो नुम्' 'न्सम्महतोऽधौ दीर्घः शौ च ।' 'संयोगान्तस्य लोपः'पुमान् पुमासौ पुमांसः । हे पुमन् । पुमासम् पुमासौ पुसः । पुंसा पुम्भ्याम् पुंभि । इत्यादि ॥ ४६ ॥

असमवे पुस कक् सौ ॥ ४७ ॥

---

१ ग्रहणीया । वक्तव्येति भाव । २ सजूर्मित्रम् ।

वेदान्तैकवेद्यस्यात्मनो बहुत्वासंभवेर्थे साम्ये सति पुम्स्शब्दस्य सुपि परे कगागमो भवति ॥४७॥

स्कोराद्योश्च ॥ ४८ ॥

सयोगाद्यो सकारककारयोर्लोपो भवति धातो र्झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च । पुंक्षु । एवं विद्व सुशब्दः । विद्वान् विद्वांसौ विद्वांसः । विद्वांसम् विद्वांसौ ॥ ४८ ॥

वसोर्व उ ॥ ४९ ॥

वसोः संबन्धिनो वकार उत्वं प्राप्नोति शसा दौ स्वरे परे तद्धिते ईपि ईकारे च । विदुषः विदुषा । 'वसा रसे' विद्वद्भ्याम् विद्वद्भिः । विद्वत्सु इत्यादि । सुवचस्शब्दस्य 'अत्वसोः सौ' इति दीर्घः । सुवचाः सुवचसौ सुवचसः । हे सुवचः । सुवचसम् सुवचसौ सुवचस । सुवचसा । 'स्रोर्विसर्गः' 'ह्वे' उत्वम् । 'उ ओ' । सुवचोभ्याम् सुवचोभिः । एवं चन्द्रमस्शब्दः । उशनस्शब्दस्य विशेषः॥४९॥

उशनसाम् ॥ ५० ॥

उशनस् पुरुदसस् अनेहस् इत्येतेषा सेर्डा भवति । डकारष्टिलोपार्थ उशना उशनसौ ।

---

१ 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति श्रुत्या प्रतिपादितस्य ।
२ पाणिनीयागमविरुद्धमिदम् । पाणिनीयास्तु ककागमम- ... सुपि 'पुंसु' इत्येव रूपं साधयन्ति ।

उशनसः ॥ (उशनसो धौ सान्तता नान्तता अदन्तता च वक्तव्या *) हे उशन हे उशनन् हे उशन । अदसूशब्दस्य विशेषः । 'त्यदादेष्टेरः' इति सर्वत्राकारः । अदस् सि इति स्थिते ॥ ५० ॥

सौ सः ॥ ५१ ॥

अदसो दकारस्य सौ परे सत्वं भवति ॥ ५१ ॥

सेरौ ॥ ५२ ॥

अदसः सेरौकारादेशो भवति । असौ । द्विवचने अदस् औ इति स्थिते । दस्य मः ॥ ५२ ॥

मादू ॥ ५३ ॥

उश्च ऊश्च ऊ । अदसो मकारात्परस्य ह्रस्वस्य ह्रस्व उकारो भवति दीर्घस्य च दीर्घ ऊकारो भवति । अमू । बहुवचने सर्वादित्वात् 'जसी' । 'अ इ ए' अमे इति स्थिते ॥ ५३ ॥

एरी बहुत्वे ॥ ५४ ॥

बहुत्वे सत्यदस एकारस्य ईकारो भवति । अमी । अमुम् अमू अमून् । मत्वे उत्वे च कृते 'टा ना स्त्रियाम्' । अमुना द्विवचने 'अद्धि' इत्यात्वं पश्चादूकारः । अमूभ्याम् ॥ ५४ ॥

भिसभिस् ॥ ५५ ॥

इदमदसोर्भिस् भिसेव भवति न भकारस्या-

१ 'संबोधने तूशनसस्त्रिरूपम्' । उशना शुक्र ।

कारः । अमीभिः । अमुष्मै अमूभ्याम् अमीभ्यः । अमुष्मात् अमूभ्याम् अमीभ्यः । अमुष्य । ओसि एत्त्वे अयादेशे च कृते पश्चादुकारः । अमुयोः अमीषाम् । अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु ॥ ५५ ॥

सामान्ये अदस कः स्यादिवच्च ॥ ५६ ॥

अमुकः अमुकौ अमुके इत्यादि सर्ववत् ॥५६॥ इति हसान्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

॥ अथ हसान्ताः स्त्रीलिङ्गा ॥

तत्र हकारान्त उपानह्शब्दः ।

नहो ध ॥ १ ॥

नहो हकारस्य धकारादेशो भवति रसे पदान्ते च । 'वाऽवसाने' धस्य तत्वं दत्वं च । उपानत् उपानद् उपानहौ उपानहः । हे उपानत् । उपानहम् उपानहौ उपानहः । उपानहा उपानद्भ्याम् उपानद्भिः । इत्यादि ॥ १ ॥ वकारान्तो दिव्शब्दः ।

दिव औं सौ ॥ २ ॥

दिवो वकारस्य औकारादेशो भवति सौ परे । द्यौः दिवौ दिवः । हे द्यौः ॥ २ ॥ दिव् अम् इति स्थिते ।

---

१ पादत्राणम् ।

वाऽमि ॥ ३ ॥

दिवो वकारस्य अमि परे वा आत्वं भवति । द्याम् दिवम् दिवौ दिवः । दिवा ॥ ३ ॥

उ रसे ॥ ४ ॥

दिवो वकारस्य रसे परे उकारो भवति।द्युभ्याम् द्युभिः । द्युषु इत्यादि ॥ ४ ॥ रेफान्तश्चतुरशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः ।

त्रिचतुरो स्त्रियां तिसृचतसृवत् ॥ ५ ॥

स्त्रियां वर्तमानयोस्त्रिचतुरशब्दयोस्तिसृचतसृ इत्येतावादेशौ भवतो विभक्तौ परतः । ऋकारस्य ऋकारवत् । ततः 'स्तुरार्' इत्यार् न भवति । ऋ-कारत्वात् । किंतु 'ऋ रम्' भवति । तिस्रः तिस्र तिसृभिः तिसृभ्यः ॥ ५ ॥

न नामि दीर्घे ॥ ६ ॥

तिसृचतसृ इत्येतयोर्दीर्घो न भवति नामि परे छन्दसि वा । तिसृणाम् । छन्दसि तु भवति । ति-सृणाम् । तिसृषु । एवं चतसृशब्दः । गिरश-ब्दस्य भेदः ॥ ६ ॥

य्वोर्विहसे ॥ ७ ॥

धातोरिकारोकारयोर्दीर्घो भवति रेफवकारयो-र्हसपरयोः पदान्ते च । गीः गिरौ गिरः । हे गीः ।

१ धातुसंबन्धिन ।

नादौ टेरत्वे कृते अनन्तर 'आवतः स्त्रियाम्' इत्याप् दीर्घत्व विभक्तिकार्यं च । पश्चात् 'मादू' इति ह्रस्वस्य ह्रस्व उकारो दीर्घस्य ऊकारश्च । असौ अमू अमूः । अमुम् अमू अमूः । अमुया अमूभ्याम् अमूभिः । अमुष्यै अमूभ्याम् अमूभ्यः । अमुष्याः अमूभ्याम् अमूभ्यः । अमुष्याः अमुयोः अमूषाम् । अमुष्याम् अमुयोः अमूषु । (सामान्ये अदस॰ क) अमुका अमुके अमुकाः । इत्यादि । स्त्रीलिङ्गे सर्वाशब्दवद्रूपं ज्ञेयम् । इति हसान्ताः स्त्रीलिङ्गाः॥१०॥

अथ हसान्ता नपुसकलिङ्गा ।

रेफान्तो वार्शब्दः ।

नपुसकात्स्यमोर्लुक् ॥ १ ॥

वाः वारी वारि २ । अयम इति विशेषणात् नुम् न भवति । वारा वार्भ्याम् वार्भिः । वार्ड इत्यादि । चतुर्शब्दे[1] 'चतुरान्शौ च' इत्याम् । चत्वारि । चत्वारि । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः । चतुर्भ्यः । चतुर्णाम् । चतुर्षु[2] ॥ १ ॥ नकारान्तोऽहन्शब्दः ।

---

१ अयं नित्यं बहुवचनान्तः । २ गौणत्वे प्रियाश्चत्वारो यस्येति विग्रहे प्रियचतुः प्रियचतुरी प्रियचत्वारि ।

३ प्रियतिसृ प्रियतिसृणी प्रियतिसृणि इत्यादि ।

अह्नः सः ॥ २ ॥

अहन्शब्दस्य नकारस्य सकारो भवति रसे पदान्ते च । 'सोर्विसर्गः' । अहः । 'ईमौ' 'वेङन्योः' । अह्नी अहनी अहानि २ । अह्ना अहोभ्याम् अहोभिः । अह्ने अहोभ्याम् अहोभ्यः । अह्नः अहोभ्याम् अहोभ्यः । अह्नः अह्नो अह्नाम् । अह्नि-अहनि अह्नो अहःसु । (ब्रह्मन्शब्दस्य रसे पदान्ते च नस्य लोपो वक्तव्य *) ब्रह्म ब्रह्मणी ब्रह्माणि २ । ब्रह्मणा ब्रह्मभ्याम् ब्रह्मभिः इत्यादि । (सबोधने धौ नपुंसके नलोपो वा वक्तव्य *) हे ब्रह्म हे ब्रह्मन् । एवं चर्मन्वर्मन्शर्मन्कर्मन्व्योमन्दामन्नामन्प्रभृतयः । (नान्तादन्ताच्छन्दसि ङिस्योर्या लोपो वक्तव्य *) (छन्दस्यागमजानागमजयोर्लोपालोपौ च वक्तव्यौ *) परमे व्योमन् । सर्वा भूतानि । त्यदादीनां स्यमोर्लुकि कृते टेरत्वं न भवति स्यादाविति विशेषणात् । द्विवचनादौ टेरत्वे कृते सर्वशब्दवद्रूप ज्ञेयम् । त्यत् त्ये त्यानि । पुन । त्यत् त्ये त्यानि । त्येन त्याभ्याम् त्यैरित्यादि । एवं तत् ते तानि २ । यत् ये यानि २ । एतत् एते एतानि २ । किम् के कानि २ । इदम् इमे इमानि । तृतीयादौ सर्वत्र पुंवत् । चकारान्तः प्रत्यच् शब्द । प्रत्यक्-प्रत्यग् 'अञ्चेरलोपो दीर्घश्च' ।

१ एषां 'अट्लोप स्वरे' इत्यकारलोपो न भवति ।

प्रतीची । 'नुमयमः' । प्रत्यञ्चि । तकारान्तो जगत्शब्दः । जगत् जगती जगन्ति । जगद्भ्याम् जगद्भिः । इत्यादि । महच्छब्दे तु 'न्सम्महतः' इति विशेषणात् सिविषये दीर्घो न । महत् महती महान्ति २ । इत्यादि । षकारान्तो हविष्शब्दः । सजुष् च । हविः हविषी हवींषि २ । इत्यादि । सजूः सजुषी सजूंषि २ । एवं सकारान्ताः पयस् तेजस् वर्चस्प्रभृतयः । पयः पयसी पयांसि २ । पयसा पयोभ्यामित्यादि । अदस्शब्दस्य स्यमो र्लुकि कृते 'स्रोर्विसर्गः' । द्विवचनादौ टेरत्वे कृते मत्वोत्वे । अदः अमू अमूनि २ । अमुना अमूभ्याम् अमीभिः । अमुष्मै अमूभ्याम् अमीभ्यः २ । अमुष्य अमुयोः अमीषाम् । अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु । शेषं पुंलिङ्गवत् ॥ २ ॥ इति हसान्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

युष्मदस्मत्प्रक्रिया ।

अथ युष्मदस्मदोः स्वरूपं निरूप्यते । तयोश्च वाच्यलिङ्गत्वात् त्रिष्वपि लिङ्गेषु समानं रूपम् ।

---

१ अमुनी इति छान्दसं रूपम् 'अमुनी भगवद्रूपे' इति श्रीमद्भागवते । २ याप्यवस्तुसदृशं लिङ्गं ययोस्तौ । 'वाच्यमित्युच्यसे भेद तल्लिङ्ग भजते तु यः । विशेषणत्वमापन्नो लिङ्ग स उच्यते ॥' इति ।

त्वमह सिना ॥ १ ॥

युष्मदस्मदोः सिसहितयोस्त्वमहमित्येतावादेशौ भवत यथासख्येन । त्वम् अहम् ॥ १ ॥

युवावौ द्विवचने ॥ २ ॥

युष्मदस्मदोर्द्विवचने परे युवाव इत्येतावादेशौ भवत ॥ २ ॥

आमौ ॥ ३ ॥

युष्मदस्मदोः पर औ आम् भवति । युवाम् आवाम् ३

यूय वय जसा ॥ ४ ॥

जसा सहितयोर्युष्मदस्मदोर्यूयं वय इत्येतावादेशौ भवतः । यूवम् वयम् ॥ ४ ॥

त्वन्मदेकत्वे ॥ ५ ॥

युष्मदस्मदो त्वत् मत् इत्येतावादेशौ भवत एकत्वे गम्यमाने । एकत्व नाम एकार्थवाचित्व नत्वेकवचनम् । तेन त्वत्पुत्रो मत्पुत्र इत्यादौ त्वन्मदादेशौ भवत एव ॥ ५ ॥

आम्स्भौ ॥ ६ ॥

युष्मदस्मदोष्टेरात्व भवति अमि सकारे भिसि च परे । त्वाम् । माम् । युवाम् । आवाम् । त्वदादेटेरत्वे कृते 'शसि' इति दीर्घत्वम् । (शसो नो वक्तव्य *) युष्मान् अस्मान् । त्वन्मदादेशे कृते ६

ए टाङ्योः ॥ ७ ॥

युष्मदस्मदोष्टेरेत्व भवति टा ङि इत्येतयोः परयोः । अयादेश । त्वया मया । युवाभ्याम् आवाभ्याम् । युष्माभिः अस्माभिः ॥ ७ ॥

तुभ्यं मह्य ङ्या ॥ ८ ॥

ङेसहितयोर्युष्मदस्मदोस्तुभ्यं मह्यमित्येतावादेशौ भवत । तुभ्यम् मह्यम् युवाभ्याम् आवाभ्याम् ॥८

भ्यसश्भ्यम् ॥ ९ ॥

युष्मदस्मद्भ्या परो भ्यस् श्भ्य भवति । शकारो भकारादित्वव्यावृत्त्यर्थः । तेनात्वैत्वे न भवतः । युष्मभ्यम् अस्मभ्यम् ॥ ९ ॥

ङसिभ्यसो स्तु ॥ १० ॥

पञ्चम्या ङसिभ्यसोः स्तुर्भवति । शकारः सर्वादेशार्थः । उकारः सुखोच्चारणार्थः । त्वत् मत् । युवाभ्याम् आवाभ्याम् । युष्मत् अस्मत् ॥ १० ॥

तव मम ङसा ॥ ११ ॥

ङसा सहितयोर्युष्मदस्मदोस्तव मम इत्येतावादेशौ भवतः । तव मम युवयोः आवयोः । सर्वादित्वात्सुट् ॥ ११ ॥

सामाकम् ॥ १२ ॥

युष्मदस्मद्भ्यां परः साम् आकम् भवति । युष्माकम् अस्माकम् । त्वयि मयि । युवयोः आ

वयोः । युष्मासु अस्मासु ॥ १२ ॥ अथाऽनयो-
रादेशविशेषविधिः प्रदर्श्यते ॥

युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाभि-स्तेमेवान्नौवस्नसौ ॥ १३ ॥

तत्रैकवचनेन सह तेमे भवत द्विवचनेन सह
वान्नौ बहुवचनेन सह वस्नसौ । उक्तञ्च—'स्वामी
ते स समायातः स्वामी मे साम्प्रतं गतः । नमस्ते
भगवन्भूयो देहि मे मोक्षमक्षयम् ॥ १ ॥ स्वामी
वा स जक्षासोचैर्दृष्टा नौ दानयाचनाम् । राजा वा
दास्यते दानं ज्ञानं नौ मधुसूदन ॥ २ ॥ देवो
वामवताद्विष्णुर्नरकारी जनार्दनः । स्वामी वो बल-
वान्राजा स्वामी नोऽसौ जनार्दनः ॥ ३ ॥ नमो वो
ब्रह्मविद्भ्यो ज्ञानं नो दीयतां धनम् । सानन्दान्व
प्रपश्याम पश्यामो न सुदुःखिनः ॥ ४ ॥' १३ ॥

त्वा माऽमा ॥ १४ ॥

अमा सहितयोर्युष्मदस्मदोस्त्वामादेशौ भवतः ।
'पश्यामि त्वा मदालीढं पश्य मा मेदभेदकम् । प-
श्यामि त्वा जगत्पूज्यं पश्य मा जगतां पते' ॥ १४

१ त्वां मां वातिक्रान्त इति विग्रहे अतित्वम् अत्यहम्
इत्यादि । २ 'विपर्ययविधानेन नियमो नेष्यते बुधैः । अतो
विभक्तिष्वन्यासु भवन्ति वस्नसादयः ॥' इति ॥ ३ सत्त्व-
क्षेम्य इत्यर्थः ॥ ४ गर्वयुक्तम् । ५ मदोत्तारम् ॥

नादौ ॥ १५ ॥

पादादौ वर्तमानयोर्युष्मदस्मदोर्नैते आदेशा भवन्ति । 'रुद्रो विश्वेश्वरो देवो युष्माकं कुलदेवता। स एव नाथो भगवानस्माकं पापनाशनः ॥ १ ॥' पादादाविति किम् । 'पान्तु वो नरसिंहस्य नखलाङ्गलकोटयः । हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः ॥ २ ॥'॥१५॥

चादिभिश्च ॥१६॥

चादिभिरपि योगे नैते आदेशा भवन्ति । 'तव चायं प्रभुर्विष्णुर्मम चायं तथैव च । तव ये शत्रवो राजन् मम तेऽप्यरिशत्रवः ॥ ३ ॥' १६ ॥

चादिर्निपात ॥ १७ ॥

चादिर्गणो निपातसंज्ञको भवति । च वा ह अह एव एवं नूनं पृथक् विना नाना स्वस्ति अस्ति दोषा मृषा मिथ्या मिथस् अथो अथ ह्यस् श्वस् उच्चैस् नीचैस् शनैस् स्वर् अन्तर् प्रातर् पुनर् भूयस् आहोस्वित् उत सह ऋते अन्तरेण अन्तरा नमस् अलम् कृतम् । 'अमानोनाः प्रतिषेधे' ईषत् किल खलु वै आरात् भृश यत् तत् स्वराश्च इत्येवमादिर्गणो निपातसंज्ञो भवति ॥ त-

---

१ अ आ इति चतुर्दश । २ आदिशब्दादन्येपि सह सार्धम् सत्रा अमा कश्चित् अयि अये ननु नु नक्तम्

आदिर्गणो विभक्त्यर्थे निपात्यते । तस्मिन्निति तत्र । यस्मिन्निति यत्र । कस्मिन्निति कुत्र क्व कुह । अस्मिन्निति अत्र । कस्मिन् काले कदा । तस्मिन् काले तदा । यस्मिन् काले यदा । सर्वस्मिन्काले सर्वदा । एकदा । तेन प्रकारेण तथा । एव यथा । केन प्रकारेण कथम् । अनेन प्रकारेण इत्थम् । तस्मादिति ततः । एव कुत अतः इत । सार्वविभक्तिकस्तसित्येके । पूर्वस्मिन्निति पुरस्तात् । परस्मिन्निति परेण । (आहि च दूरे) दक्षिणाहि वसन्ति चाण्डालाः। (किमः सामान्ये चिदादि *) कश्चित् कश्चन क्वचन कौचित् केचित् । (तदधीनकात्स्न्र्ययोर्वा सात्*] राजाधीन राजसात् । सर्वं भस्म करोति इति भस्मसात् । (ऊर्युरर्यङ्गीकरणे*) । ऊरीकृत्य उररीकृत्य । (सद्यादि काले निपात्यते*) । सद्यः अद्य सपदि अधुना साम्प्रतम् शीघ्रम् झटिति पूर्वेद्यु अन्येद्यु परेद्युः । उभयेद्युः । यर्हि तर्हि इत्यादि ॥१७॥

प्रादिरुपसर्गा ॥ १८ ॥

प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति

इति नाम मन्ये । २ 'केप्येपां द्योतका केऽपि वाचका येप्यनर्थका । आगमा इव केऽपि स्यु संभूयार्थस्य साधका ॥'

परि उप अन्तर् आविर् अय गण उपसर्गसंज्ञकाः१८

प्राग्धातो ॥ १९ ॥

उपसर्गा धातोः प्राक् प्रयोक्तव्याः ॥ १९ ॥

तदव्ययम् ॥ २० ॥

तदिद प्रादिरूपमव्ययसंज्ञ भवति ॥ २० ॥

क्त्वाद्यन्त च ॥ २१ ॥

क्त्वा क्यप् तुम् नुम् च्वि डा धा वतु आम् कृत्वस् शस् इत्येतदन्तं शब्दरूपमव्यय भवति ॥२१॥

अव्ययाद्विभक्तेर्लुक् ॥ २२ ॥

अव्ययात्परस्या विभक्तेर्लुग्भवति न तु शब्दनिर्देशे । अव्ययानां न च लिङ्गादिनियमः । उक्तं हि । 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ १ ॥' उक्तान्यव्ययान्यलिङ्गानि ॥ २२ ॥ इत्यव्ययानि ॥

अथ स्त्रीप्रत्यया ॥

अधुना लिङ्गविशेषविजिज्ञापयिषया स्त्रीप्रत्यया प्रस्तूयन्ते ।

---

१ 'प्रादिकर्मणि सामर्थ्ये टीर्घे च मृशार्सभवे । वियोगशुद्धिशक्तीच्छाशान्तिपूजामदर्शने ॥' २ पुस्त्रीनपुंसकादिरहितानि ।

आवत स्त्रियाम् ॥ १ ॥

अकारान्तान्नाम्न[1] स्त्रिया वर्तमानादाप्प्रत्ययो भवति । जाया माया मेधा श्रद्धा धारा इत्यादि । (अजादेश्चाप् वक्तव्यः *) । अजा एडका कोकिला माला वत्सा शूद्रा गणिका ॥ १ ॥

काप्यत ॥ २ ॥

कापि परे पूर्वस्याकारस्य इकारो भवति । कारिका पाठिका कालिका तालिका । 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः। आप चैव हसान्ताना यथा वाचा निशा दिशा ॥ १ ॥' अवगाहः वगाहः । अपिधान पिधानम् ॥ २ ॥

ह्रस्वो वा ॥ ३ ॥

स्त्रिया कापि परे तकारादौ च पूर्वस्य ह्रस्वो वा भवति । वेणिका वेणीका । नदिका नदीका । श्रेयसितरा श्रेयसीतरा । श्रेयसितमा । श्रेयसीतमा । नौकादौ ह्रस्वो न भवति । चाग्रहणाद्विय विवक्षा । निश्चयेन पतन्त्यनेकेष्वर्थेष्विति निपातानामनेकार्थत्वात् ॥ ३ ॥

न्रण ईप् ॥ ४ ॥

नकारान्तादृकारान्तादणन्ताच्च स्त्रियामीप्प्रत्ययो भवति । दण्डिनी दन्तिनी करिणी मालिनी ।

---

१ एकवारं गतस्याप्यस्य सूत्रस्य स्त्रीप्रत्ययार्थं पुनर्ग्रहणम् ।

'प्रथमान्तो यदा कर्ता कर्मणि द्वितीया तदा। यदा कर्ता तृतीयान्त कर्मणि प्रथमा तदा ॥ १ ॥ मनसि वचसि कृत्ये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः । परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्य निजगुणविकसन्त सन्ति सन्तः कियन्तः ॥ २ ॥ कुमाराः शेरते स्वैर रोरूयन्ते च नारका । जेगीयन्ते च गीतज्ञा मेम्रियन्ते रुजार्दिता ॥३॥'२॥

आमन्त्रणे च ॥ ३ ॥

आमन्त्रणमभिमुखीकरण तस्मिन्नर्थे प्रथमा विभक्तिर्भवति । 'मा समुद्धर गोविन्द प्रसीद परमेश्वर । कुमारौ स्वैरमासाथां क्षमध्वं भो तपस्विनः ॥ ४ ॥' ॥ ३ ॥

भोसे ॥ ४ ॥

भोस् भगोस् अघोस् एते शब्दा निपात्यन्ते विषये।'क्षमस्व भो दुराराध्य भगोस्तुभ्यं नमः सदा। अधीष्व भो महाप्राज्ञ घातयाघोः स्वघस्मरम् ॥५॥ ॥ ४ ॥ इति प्रथमा ॥ १ ॥

शेषा कार्ये ॥ ५ ॥

कर्तृसाधनयोर्दानपात्रे विश्लेषावधौ सबन्धाधारभावयोः शेषा विभक्तयो द्वितीयाद्या एष्वर्थेषु भवन्ति । (कार्ये कर्मकारके उत्पाद्ये आप्ये सत्कार्ये

---

१ पूर्वं गतमिद सूत्रम् । २ पातकं कार्ल्ल वा घातयेत्यर्थ ।

विकार्ये च द्वितीया विभक्तिर्भवति)। 'कर्ता कर्म च करण सम्प्रदान तथैव च । अपादानाधिकरणमित्याहु कारकाणि पट् ॥ ६ ॥ कटं करोति कारुको रूपं पश्यति चाक्षुप । राज्य प्राप्नोति धर्मिष्ठः सोमं सुनोति सोमपा ॥ ७ ॥ अभिसर्वतसो: कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु । द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ ८ ॥' अभितो ग्राम नदी वहति । सर्वतो ग्राम वनानि सन्ति । धिग् देवदत्तम् । उपर्युपरि ग्राम मेघा' पतन्ति । अधोऽधोग्राम शलभाः पतन्ति । अध्यधिग्राम मृगाश्चरन्ति । समया निकषा-हा-प्रतियोगेऽपि । समया ग्रामम् । निकषा ग्रामम् । अनु ग्रामम् ॥ ५ ॥

कालाध्वनोर्नैरन्तर्येऽपि ॥ ६ ॥

कालाध्वनोर्नैरन्तर्ये द्वितीया विभक्तिर्भवति । मासमधीते । क्रोश पर्वतः । नैरन्तर्याभावे मासस्य द्विरधीते । क्रोशस्यैकदेशे पर्वत ॥ ६ ॥ इति द्वितीया ॥ २ ॥

कर्तरि प्रधाने क्रियाश्रये साधके च ॥७॥

क्रियासिद्ध्युपकारके करणेऽर्थे तृतीया विभक्तिर्भवति । 'भिन्नः शरेण रामेण रावणो लोकरावणः । कराग्रेण विदीर्णोऽपि वानरैर्युध्यते पुन' ॥ ॥ ९ ॥' ७ ॥ इति तृतीया ॥ ३ ॥

---

१ धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ।

दानपात्रे चतुर्थी ॥ ८ ॥

दानपात्रे संप्रदानकारके चतुर्थी । सम्यक् श्रेयो बुद्ध्या प्रदीयते तत् सम्प्रदानम् । 'ददाति दण्डं पुरुषो महीपतेर्न चातिभक्त्या न च दानकाम्यया । यद्दीयते दानतया सुपात्रे तत्सम्प्रदानं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ १० ॥' वेदविदे गां ददाति । अन्यत्र राज्ञो दण्डं ददाति । रजकस्य वस्त्रं ददाति ॥ ८ ॥ इति चतुर्थी ॥ ४ ॥

विश्लेषाऽवधौ पञ्चमी ॥ ९ ॥

विश्लेषो विभागस्तत्र योऽवधिश्चलतयाऽचलतया वा विवक्षितस्तत्रापादाने पञ्चमी । धावतोऽश्वादपतत् । भूभृतोऽवतरति गङ्गा ॥ ९ ॥ इति पञ्चमी ॥ ५ ॥

सबन्धे षष्ठी ॥ १० ॥

सबन्धिनोर्मध्ये योऽप्रधानस्तत्र षष्ठी । 'भेद्यभेदकयोः श्लिष्टः सबन्धोऽन्योन्यमिष्यते । द्विष्ठो यद्यपि संबन्धः षष्ठ्युत्पत्तिस्तु भेदकात् ॥ ११ ॥ भेद्यं विशेष्यमित्याहुर्भेदकं च विशेषणम् । प्रधानं च विशेष्यं स्यादप्रधानं विशेषणम् ॥१२॥' एकक्रियातः परस्परापेक्षारूपः संबन्धः । 'राज्ञः स पुरुषो ज्ञेयः पित्रोरेतत्प्रपूजनम् ॥ गुरूणां वचनं पथ्यं रसवद्वचः ॥ १३ ॥' १० ॥ इति षष्ठी ॥६॥

आधारे सप्तमी ॥ ११ ॥

तदाधारोऽधिकरणम् । तत् षड्विधम् । औपश्लेषिक १ सामीप्यकं २ अभिव्यापक ३ वैषयिक ४ नैमित्तिक ५ औपचारिक ६ चेति । 'कटे शेते कुमारोसौ वटे गावः सुशेरते । तिलेषु विद्यते तैल हृदि ब्रह्मामृतं परम् ॥ युद्धे संनह्यते धीरोऽङ्गुल्यग्रे करिणां शतम् ॥ १४ ॥' ॥ ११ ॥

भावे सप्तमी ॥ १२ ॥

प्रसिद्धक्रिययाऽप्रसिद्धक्रियाया लक्षणं बोधनं भावस्तत्र सप्तमी । वर्षति [1]देवे चौर आयातः । पतत्यशुमालिनि पतितोऽराति । काले शरदि पुष्यन्ति सप्तच्छदाः ॥ १२ ॥

अथोपपदविभक्त्यर्थो निरूप्यते ॥

विनासहनमस्कृतेनिर्धारणस्वाम्यादिभिश्च ॥ १३ ॥

एतैरपि योगे द्वितीयाद्या विभक्तयो भवन्ति । विना पाप सर्वं फलति । 'विना वातं विना वर्षं विद्युतः पतनं विना ॥ विना हस्तिकृतं दोषं केनेमौ पतितौ द्रुमौ ॥ १५ ॥ 'अन्तरेणाक्षिणी किं जीवितेन । अन्तरा त्वा मा हरिरित्यादिपदात् ग्राह्यम् ॥ १३ ॥

---

१ 'राज्ञि मेघे सुरे देव' इति कोश ।

सहादियोगे तृतीयाऽप्रधाने ॥ १४ ॥

सह सदृश साक सार्धं सम योगेपि तृतीया भवति । सह शिष्येणागतो गुरुः । सदृशश्चैत्रो मैत्रेण । सार्कं नयनाभ्या श्लक्ष्णा दन्ताः । सार्धं घनिभिर्भृतः साधुः । सम चन्द्रेणोदितो गुरुः ॥ १४ ॥

नम स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगे चतुर्थी ॥ १५ ॥

नमो नारायणाय । स्वस्ति राज्ञे । सोमाय स्वाहा । पितृभ्य' स्वधा । अलं मल्लो मल्लाय । वषडिन्द्राय ॥ १५ ॥

ऋतेआदियोगे पञ्चमी ॥ १६ ॥

ऋते ज्ञानान्न मुक्ति' । अन्यो गृहाद्विहारः । आराद्वनात् । इतरो ग्रामात् ॥ १६ ॥

ऋतेयोगे द्वितीया च ॥ १७ ॥

ज्ञानमृते । चकारात् विनायोगेऽपि तृतीयापञ्चम्यौ स्तः । ज्ञानेन विना । ज्ञानात् विना ॥ १७ ॥

दिग्योगे पञ्चमी ॥ १८ ॥

पूर्वो भीष्माद्वसन्तः ॥ १८ ॥

---

१ ऋते अन्य आरात् इतर अञ्चूत्तरपद दिग्वाचक शब्द आहि आ च एते ऋतआदय ।

निर्धारणे षष्ठीसप्तम्यौ ॥ १९ ॥

निर्धारणं द्रव्यगुणजातिभिः समुदायात्पृथक्करणं तत्र षष्ठीसप्तम्यौ भवतः । क्रियापराणां भगवदाराधकः श्रेष्ठः क्रियापरेषु वा । गवां कृष्णा गौः संपन्नक्षीरा गोषु वा । एतेषां क्षत्रियः शूरतम एतेषु वा ॥ १९ ॥

स्वाम्यादिभिश्च ॥ २० ॥

स्वाम्यादिभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ भवतः । गवां स्वामी गोषु स्वामी । गवामधिपतिः गोष्वधिपतिः २०

कर्तृकार्ययोरक्तादौ कृति षष्ठी ॥ २१ ॥

कर्तरि कार्ये च षष्ठीविभक्तिर्भवति क्तादिवर्जिते कृदन्ते शब्दे प्रयुज्यमाने । व्यासस्य कृतिः । भारतस्य श्रवणम् ॥ २१ ॥

स्मरतौ च कार्ये ॥ २२ ॥

स्मरतौ धातौ प्रयुज्यमाने कार्ये कर्मणि षष्ठी । मातुः स्मरति । मातरं स्मरति । (हेतौ तृतीया पञ्चमी च वक्तव्या*) अनित्यः शब्दः कृतकत्वेन कृतकत्वाद्वा ॥ २२ ॥

---

१ अत्र 'द्विषः शतुर्वा' । मुरस्य मुरं वा द्विषन् । 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' चित्रं गवां दोहोऽगोपेन इति संग्रहोऽपि ।

भयहेतौ पञ्चमी ॥ २३ ॥

चोराद्बिभेति । व्याघ्रात्त्रस्यति । विद्युत्पाताच्च कित ॥ २३ ॥

षष्ठी हेतुप्रयोगे च ॥ २४ ॥

कस्य हेतोरियं कन्या । अन्नस्य हेतोर्वसति २४

इत्थंभावे तृतीया ॥ २५ ॥

शिष्यं पुत्रेण पश्यति । संसारमसारेण पश्यति । पुष्करिणीं नद्या पश्यति ॥ २५ ॥

येनाङ्गविकारः ॥ २६ ॥

येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनोऽङ्गविकारो लक्ष्यते तस्मादङ्गात्तृतीया विभक्तिर्भवति । देवदत्तोऽक्ष्णा काणः । पादेन खञ्जः । कर्णेन बधिरः । शिरसा खल्वाटः ॥ २६ ॥

जनिकर्तुः प्रकृतिः ॥ २७ ॥

जायमानस्य कार्यस्योपादानमपादानसंज्ञं भवति ।

---

१ हेतुशब्दे प्रयुज्यमाने । २ चकारात्सर्वादे हेतुप्रयोगे सर्वा विभक्तयो भवन्ति । केन हेतुना । कस्य हेतोः । निमित्तकारणे हेत्वर्थप्रयोगेऽपि सर्वा विभक्तयो भवन्ति । को हेतुः कं हेतुम् । केन हेतुना । कस्मै हेतवे । कस्मात् कस्य च हेतोः । कस्मिन्हेतौ । ३ कञ्चित्प्रकारं प्राप्त इत्यर्थः । ४ च ५ वर्तमानस्य वा ।

तत्रापादाने पञ्चमी । 'यस्मात्प्रजाः प्रजायन्ते तद्ब्र-
ह्मेति विदुर्बुधाः' ॥ २७ ॥

आङादियोगे पञ्चमी ॥ २८ ॥

आ पाटलिपुत्राद्वृष्टो देवः ॥ २८ ॥

तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ २९ ॥

'संयमाय श्रुतं धत्ते नरो धर्माय संयमम् । धर्मं
मोक्षाय मेधावी धनं दानाय भुक्तये ॥ १६ ॥' २९ ॥

क्रुध्यादियोगे चतुर्थी ॥ ३० ॥

क्रूराय क्रुध्यति । मित्राय द्रुह्यति । गुणवते अ-
सूयति ॥ (ल्यब्लोपे पञ्चमी च वक्तव्या*) हर्म्या-
त् प्रेक्षते । आसनात् प्रेक्षते ॥ (निमित्तात्कर्मयोगे
सप्तमी च वक्तव्या*) । 'चर्मणि द्वीपिनं हन्ति द-
न्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि
पुष्कलको हतः ॥ १७ ॥ ३० ॥

---

१ अत्र प्रजायन्ते इति जनिधातु क्रियापदम् । प्रजा इति जनिकर्तृरूपकार्यवाचक पदम् । तस्य प्रकृतिर्यच्छब्दनिर्दिष्ट ब्रह्म । अतो यस्मादिति पञ्चमी । २ आङ् मर्यादाभिविध्योः । ३ स अर्थो यस्य वा स एवार्थ वा । तस्मै कार्यायेदं तस्य भावस्तादर्थ्यम् । ४ 'ल्यबर्थो दृश्यते यत्र ल्यबन्तं न प्रयुज्यते । स एव ल्यब्लोप स्यादिति प्रोक्तं मनीषिभिः ॥' गृहमारुह्य प्रेक्षते इत्यर्थः ॥

विषये च ॥ ३१ ॥

तर्के चतुरः ॥ ३१ ॥

षष्ठी सप्तम्यौ चानादरे ॥ ३२ ॥

बहूना क्रोशता गतश्चौरः । बहुष्वसाधुषु निवारयत्स्वपि स्वयमार्यो याति साधुमार्गेण । बहुषु साधुषु वसत्स्वपि स्वयमनार्यो यात्यसाधुमार्गेण । मातापित्रो रुदतो प्रव्रजति पुत्रः ॥ ३२ ॥

अन्योक्ते प्रथमा ॥ ३३ ॥

यदिदं कार्यत्वादन्येनाख्यातेन कृता चोक्तं भवति तदा प्रथमा प्रयोक्तव्या । घटः क्रियते । पटः कार्यः ॥ ३३ ॥

छन्दसि स्यादि सर्वत्र ॥ ३४ ॥

दध्ना जुहोति । पुनन्तु ब्रह्मणस्पति । प्रजतीर्विरेजुः ॥ ३४ ॥ इति कारकप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ समासप्रकरणम् ॥

अथार्थयद्विभक्तिविशिष्टानां पदाना समासो निरूप्यते ॥

समासश्चान्वये नाम्नाम् ॥ १ ॥

नाम्नामन्वययोग्यत्वे सत्येव समासो भवति । च-

---

१ 'विभक्तिर्लुप्यते यत्र तदर्थस्तु प्रतीयते । ऐकपद्यं प-दानां च स समासोऽभिधीयते ॥'

शब्दात्तद्धितेऽपि भवति । ततो, भार्या पुरुषस्येत्यादौ न भवति परस्परमसंबन्धात् । स च षड्विधः । अव्ययीभावस्तत्पुरुषो द्वन्द्वो बहुव्रीहिः कर्मधारयो द्विगुश्चेति । तत्र पूर्वपदप्रधानोऽव्ययीभावः । द्विगुतत्पुरुषौ परपदप्रधानौ । द्वन्द्वकर्मधारयौ चोभयपदप्रधानौ । बहुव्रीहिरन्यपदप्रधानः । तस्य क्रियाभिसंबन्धादुभयपदप्रधानो बलवान् । ऐकपद्यमैकस्वर्यमेकविभक्तिकत्वं च समासप्रयोजनम् । अधिस्त्री इति स्थिते स्त्रीशब्दाद्द्वितीयैकवचनं अम् । स्त्रीभ्रुवोः । स्त्रियमधिकृत्य भवतीति विग्रहे । अन्वययोग्यार्थसमर्थकः पदसमुदायो विग्रहः । वाक्यमिति यावत् । स्वपदैरन्यपदैर्वा विविच्य कथनं विग्रहः । (कृते समासे अव्ययस्य पूर्वनिपातो वक्तव्यः*)॥१॥

पूर्वेऽव्ययेऽव्ययीभावः ॥ २ ॥

अव्यये पूर्वपदे सति योऽन्वयः सोऽव्ययीभावसंज्ञकः समासो भवति । इति समाससंज्ञायां सत्याम् २

समासप्रत्यययोर्लुक् ॥ ३ ॥

समासे वर्तमानाया विभक्तेः प्रत्यये च परे लुग् भवति । इत्यमो लुक् । निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः । नामसंज्ञायां स्यादिर्विभक्तिः । अधिस्त्री सि इति स्थिते ॥ ३ ॥

स नपुंसकम् ॥ ४ ॥

सोऽव्ययीभावो नपुंसकलिङ्गो भवति । नपुंसकत्वाद्ध्रस्वत्वम् । अधिस्त्रि ॥ ४ ॥

अव्ययीभावात् ॥ ५ ॥

अव्ययीभावात्परस्या विभक्तेर्लुग् भवति । अधिस्त्रि गृहकार्यम् । रायमतिक्रान्तमतिरि कुलम् । नावमतिक्रान्तमतिनु जलम् ॥ (ह्रस्वादेशे सन्ध्यक्षराणामिकारोकारौ च वक्तव्यौ *) । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः । रूपस्य योग्य अनुरूपम् । पदार्थान् व्याप्तुमिच्छा वीप्सा । विष्णुंविष्णु प्रति प्रतिविष्णु । सादृश्ये तु यथा हरिस्तथा हरः ॥ ५ ॥

यथाऽसादृश्ये ॥ ६ ॥

यथाशब्दोऽसादृश्ये वर्तमानः समस्यते । शक्तिमनतिक्रम्य करोतीति यथाशक्ति ॥ ६ ॥

अतोऽमनत ॥ ७ ॥

अकारान्तादव्ययीभावात्परस्या विभक्तेरम् भवति अतं वर्जयित्वा । कुम्भस्य समीपे उपकुम्भं वर्तते । उपकुम्भं पश्य । अनत इति विशेषणात्पञ्चम्या अम् न भवति ॥ ७ ॥

वा टाङ्योः ॥ ८ ॥

टा ङि इत्येतयोर्वा अम् भवति । उपकुम्भेन कृतं

उपकुम्भकृतम् । उपकुम्भ निधेहि उपकुम्भे निधेहि । उपकुम्भादानय ॥ ८ ॥

अवधारणार्थे यावति च ॥ ९ ॥

अवधारणार्थे यावच्छब्दे पूर्वपदे सति अन्ययीभावसंज्ञकः समासो भवति । यावन्त्यमत्राणि संभवन्ति तावतो ब्राह्मणाश्चिमन्त्रयस्वेति यावदमत्रम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकं वर्तते ॥ ९ ॥ इत्यव्ययीभावः ॥

अमादौ तत्पुरुष ॥ १ ॥

द्वितीयाद्यन्ते पूर्वपदे सति योऽन्वयः स तत्पुरुषसञ्ज्ञक समासो भवति । ग्राम प्राप्तो ग्रामप्राप्त । दात्रेण छिन्नं दात्रच्छिन्नम् । यूपाय दारु यूपदारु । वृकेभ्यो भयं वृकभयम् । राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः । अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः ॥ (क्वचिदमाद्यन्तस्य परत्वम् *) । आहिताग्निः । पूर्वं भूतो भूतपूर्व ॥ (समासे क्वचिदेकपद्यं णत्वहेतुः *) शराणां वनं शरवणम् । आम्राणां वनं आम्रवणम् । (पानस्य वा *) सुरापानं सुरापाणम् ॥ १ ॥

नञि ॥ २ ॥

नञि पूर्वपदे सति योऽन्वय स तत्पुरुषसञ्ज्ञकः समासो भवति । न ब्राह्मणोऽब्राह्मणः ॥ २ ॥

ना ॥ ३ ॥

समासे सति नञोऽकारादेशो भवति नाकादिवर्जम् । नाकः । नपुंसकम् ॥ ३ ॥

अन् स्वरे ॥ ४ ॥

समासे सति नञोऽनादेशो भवति स्वरे परे। अश्वादन्योऽनश्वः । धर्माद्विरुद्धोऽधर्म । ग्रहणाभावोऽग्रहणमित्यादि । तदन्यतद्विरुद्धतदभावेषु नञ् वर्तते ॥ ४ ॥ इति तत्पुरुषः ॥

चार्थे द्वन्द्व ॥ १ ॥

समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्वेति प्रत्येकमेकक्रियाभिसंबन्धे समुच्चये समासो नास्ति । बटो भिक्षामट गां चानयेति क्रमेण क्रियाद्वयसंबन्धे अन्वाचये च समासो नास्ति । परस्परमसंबन्धात् । इतरेतरयोगे समाहारे च चार्थे द्वन्द्व समासो भवति । (द्वन्द्वेऽल्पस्वरप्रधाने इकारोकारान्ताना पूर्वनिपातो वक्तव्यः *) अग्निश्च मारुतश्च अग्निमारुतौ । पटुश्च गुप्तश्च पटुगुप्तौ॥स्त्री च पुरुषश्च स्त्रीपुरुषौ ।भोक्ता च भोग्यश्च भोक्तृभोग्यौ। धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ॥ (देवताद्वन्द्वे पूर्वपदस्य दीर्घो वक्तव्य *) अग्निश्च

---

१ आदिशब्दात् नाग नमुचि नख नक्षत्र नपुंसक नकुल नग नक्र नभ्राट् नासत्य नाराच नचिकेता नापित नमेरु ननान्द इत्यादयोऽपरे भाव्या ।

सोमश्च अग्नीषोमौ । इन्द्रश्च बृहस्पतिश्च इन्द्राबृहस्पती (अग्न्यादेः सोमादीना षत्व वक्तव्यम्*) इतरेतरयोगे द्विवचनम् । अग्नीषोमौ । (एकवद्भावो वा समाहारे वक्तव्य *) शशाश्च कुशाश्च पलाशाश्च शशकुशपलाशा । तेषां समाहारे शशकुशपलाशम् ॥ १ ॥

स नपुंसकम् ॥ २ ॥

यस्यैकवद्भाव स नपुसक भवति ॥ (अन्यादीना विभक्तिलोपे कृते पूर्वस्य समागमो वक्तव्यः *) अन्यश्च अन्यश्च अन्योन्यम् । परश्च परश्च परस्परम् ॥ २ ॥ इति द्वन्द्वः ॥

एकत्वे द्विगुद्वन्द्वौ ॥ १ ॥

एकत्वे वर्तमानौ द्विगुद्वन्द्वौ नपुसकलिङ्गौ भवतः ॥ १ ॥

संख्यापूर्वो द्विगु ॥ २ ॥

सख्यापूर्व समासो द्विगुर्निगद्यते ॥ २ ॥

समाहारेऽत ईप् द्विगु ॥ ३ ॥

समाहारेऽर्थे द्विगु समासो भवति ततोऽकारान्तादीप्प्रत्ययो भवति । दशाना ग्रामाणा समाहारो दशग्रामी । अकारान्तो द्विगुः स्त्रिया

---

१ 'यत्र द्वित्व बहुत्व च स द्वन्द्व इतरेतर । समाहार स विज्ञेयो यत्रैकत्व नपुसकम्' ॥ ७ ॥

भाप्यते । पञ्चाम्रय समाहृता इति पञ्चाऽम्नि । पञ्चाना गवा समाहार पञ्चगु । नपुसकत्वाद्धस्वत्वम् । त्रिफलेति रूढि । (पात्रादीनामीप्प्रतिषेधो वक्तव्यः * ॥ ३ ॥ इति द्विगुः ॥

बहुव्रीहिरन्यार्थे ॥ १ ॥

अन्यपदार्थे प्रधाने य समासः स बहुव्रीहिसंज्ञक समासो भवति । बहु धन यस्य स बहुधन । अस्ति धनं यस्य स अस्तिधन । यस्य प्रधानस्यैकदेशो विशेषणतया यत्र ज्ञायते स तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । यथा लम्बौ कर्णौ यस्य सः लम्बकर्ण ॥ (बहुव्रीहौ विशेषणसप्तम्यन्तयोः पूर्वनिपातो वक्तव्य *) कण्ठे कालो यस्यासौ कण्ठकाल । करे धन यस्य स करधन ॥ १ ॥

नेन्द्वादिभ्य ॥ २ ॥

सप्तम्यन्तस्य पूर्वनिपातो न भवति । इन्दुशेखर । चक्रपाणिः । पद्मनाभ । कपिध्वज ॥ २ ॥

प्रजामेधयोरसुक् ॥ ३ ॥

सुप्रजाः सुमेधा दुर्मेधा । 'अत्वसोः सौ' ॥ ३ ॥

धर्मादन् ॥ ४ ॥

सुष्ठु धर्मो यस्य स सुधर्मा ॥ ४ ॥

अन्यार्थे ॥ ५ ॥

स्त्रीलिङ्गस्यान्यार्थे वर्तमानस्य ह्रस्वो भ

पुवद्वा ॥ ६ ॥

समासे सति समानाधिकरणे पूर्वस्य स्त्रीशब्दस्य पुंवद्भावो वा भवति । पुंवद्भावादीपो निवृत्तिः । रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्यः । वाग्रहणात् कल्याणीप्रिय इत्यादौ न भवति ॥ ६ ॥

गो. ॥ ७ ॥

गोशब्दस्यान्यार्थे वर्तमानस्य ह्रस्वो भवति । पञ्च गावो यस्य स पञ्चगुः ॥ (सङ्ख्यासुव्याघ्रादिपूर्वस्य पादशब्दस्यालोपो वक्तव्यः*)। सहस्रं पादा यस्य स सहस्रपात् । शोभनौ पादौ यस्य स सुपात् । व्याघ्रस्य पादाविव पादौ यस्य स व्याघ्रपात् । द्वौ पादौ यस्य स द्विपात् द्विपादौ द्विपादः । द्विपादं द्विपादौ ॥ (शसादौ स्वरे परे पदादेशश्च वक्तव्यः *)। द्विपदः द्विपदा द्विपाद्भ्याम् द्विपाद्भिः इत्यादि ॥ ७॥

टाडका ॥ ८ ॥

समासे सति ट अ ड क इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अचिन्त्यो महिमा यस्यासावचिन्त्यमहिमः । 'टकारस्तत्पुरुषे च अकारो द्वन्द्व एव च । डकारश्च बहुव्रीहौ ककारोऽनियमो मतः ॥ २ ॥' ॥ ८ ॥

नो वा ॥ ९ ॥

---

१ एकविभक्त्यन्तानां विशेषणविशेष्यभावेनैकार्थनिष्ठत्वम् ।

नान्तस्य पदस्य टेर्लोपो वा भवति यकारे स्वरे च परे । वाग्रहणात् क्वचिन्न भवति । उपधालोप श्च । अह्नो मध्य मध्याह्न । कवीना राजा कवि राज । टकारानुबन्ध ईवर्थ । कविराजी । राज्ञा पू राजपुरम् । वाक् च मनश्च वाङ्मनसम् । दक्षि णस्या दिशि पन्था दक्षिणापथ । अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रम् । द्वौ च त्रयश्च परिमाणं येषा ते द्वि त्रा । पञ्च च षट् च परिमाणं येषा ते पञ्चषा । बहवो राजानो यस्या नगर्या सा बहुराजा नगरी । अत्र टिलोपे कृते 'आवतः स्त्रियाम्' इत्याप् । बहव कर्तारो यस्य स बहुकर्तृक ॥ ९ ॥

कर्मधारयस्तुल्यार्थे ॥ १० ॥

पदद्वये तुल्यार्थे एकार्थनिष्ठे सति कर्मधारय समासो भवति । नील च तदुत्पलं च नीलोत्पलम् । रक्ता चासौ लता च रक्तलता । पुमांश्चासौ कोकि लश्चेति पुंस्कोकिल । (पुसः खपे संयोगान्तलोपो वक्तव्य *) पुंक्षीरम् ॥ १० ॥

सह वर्तत इति सपुत्र । सहसतिरसा सध्रिसमितिरय । सह अञ्चतीति सध्र्यङ् । सम् अञ्चतीति सम्यङ् । तिर अञ्चतीति तिर्यङ् ॥ १२ ॥

को कदादि ॥ १३ ॥

कुशब्दस्य कुत्सितेपदर्थयोस्तत्पुरुपे कत् कव का आदेशा भवन्ति । कुत्सित अश्व कदश्वम् । ईपदर्थे । ईपदुष्ण कवोष्ण कोष्णम् । कालवणम् । कोर्मन्दादेशश्च । मन्दोष्णम् । रथवदयोश्च । कद्रथः । कद्वद ॥ १३ ॥

पुरुपे वा ॥ १४ ॥

कुपुरुप कापुरुप ॥ १४ ॥

पथ्यक्षयो ॥ १५ ॥

कोः कादेश स्यात् । कुपथः कापथः । कुअक्षः काक्षः ॥ १५ ॥

ईषदर्थे च ॥ १६ ॥

ईपज्जल काजलम् । पड्भिरधिका दश पोडश । पट् दन्ता यस्य पोडन् । पप् दन्त इति स्थिते । दन्तस्य दतृ । ऋ इत् पस्य चत्वं दस्य डः । 'धृतो नुम्' । पोडन् । पट् प्रकारा पोढा । सङ्ख्यायाः प्रकारे धा । धस्य ढ (पप उत्व दतृदशधासूत्तर-

नान्तस्य पदस्य टेर्लोपो वा भवति यकारे स्वरे च परे । वाग्रहणात् क्वचिन्न भवति । उपधालोप श्च । अह्नो मध्य मध्याह्न । कवीनां राजा कवि राज । टकारानुबन्ध ईमर्थ । कविराजी । राज्ञ पूः राजपुरम् । वाक् च मनश्च वाङ्मनसम् । दक्षि णस्या दिशि पन्था दक्षिणापथ । अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रम् । द्वौ च त्रयश्च परिमाण येषा ते द्वि- त्राः । पञ्च च षट् च परिमाणं येषा ते पञ्चषा । बहवो राजानो यस्या नगर्या सा बहुराजा नगरी । अत्र टिलोपे कृते 'आवत स्त्रियाम्' इत्याप् । बहवः कर्तारो यस्य स बहुकर्तृक ॥ ९ ॥

कर्मधारयस्तुल्यार्थे ॥ १० ॥

पदद्वये तुल्यार्थे एकार्थनिष्ठे सति कर्मधारय समासो भवति । नीलं च तदुत्पलं च नीलोत्पलम् । रक्ता चासौ लता च रक्तलता । पुमांश्चासौ कोकि- लश्चेति पुस्कोकिलः । (पुस सपे 'संयोगान्तलोपो वक्तव्यः' *) पुंक्षीरम् ॥ १० ॥

नाम्नश्च कृता समास ॥ ११ ॥

प्रादेरुपसर्गस्य नाम्नश्च कृदन्तेन समासस्तत्पुरुषो भवति । प्रकृष्टो वादः प्रवाद । कुम्भ करोतीति कुम्भकारः ॥ ११ ॥

सहादे सादि ॥ १२ ॥

समासे सति सहादीना सादिर्भवति । पुत्रेण

सह वर्तत इति सपुत्र । सहसंतिरसा सध्रिसमितिरय । सह अञ्चतीति सध्र्यङ् । सम् अञ्चतीति सम्यङ् । तिरः अञ्चतीति तिर्यङ् ॥ १२ ॥

को कदादि ॥ १३ ॥

कुशब्दस्य कुत्सितेषदर्थयोस्तत्पुरुषे कत् कव का आदेशा भवन्ति । कुत्सित अन्न कदन्नम् । ईषदर्थे । ईषदुष्ण कवोष्ण कोष्णम् । कालवणम् । कोर्मन्दादेशश्च । मन्दोष्णम् । रथवदयोश्च । कद्रथः । कद्वदः ॥ १३ ॥

पुरुषे वा ॥ १४ ॥

कुपुरुष कापुरुष ॥ १४ ॥

पथ्यक्षयो ॥ १५ ॥

को कादेश स्यात् । कुपथः कापथः । कुअक्षः काक्षः ॥ १५ ॥

ईषदर्थे च ॥ १६ ॥

ईषज्जल काजलम् । षड्भिरधिका दश षोडश । षट् दन्ता यस्य षोडन् । षष् दन्त इति स्थिते । दन्तस्य दतृ । ऋ इत् षस्य उत्व दस्य डः । 'ऋतो नुम्' । षोडन् । षट् प्रकाराः षोढा । संख्यायाः प्रकारे धा । धस्य ढ (षष उत्वं दतृदशधासूत्तर-

अमुष्य अपत्य आमुष्यायण[1] ॥ ९ ॥

पितृमातृभ्यां व्यड्डुलौ ॥ १० ॥

पितुर्भ्राता पितृव्य । मातुर्भ्राता मातुल ॥१०॥

पितुर्डामहन् ॥ ११ ॥

पितु पिता पितामहः। पितुर्माता पितामही॥११॥

लुग्बहुत्वे क्वचित् ॥ १२ ॥

अपत्येऽर्थे उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य बहुत्वे सति क्वचिदृष्यनृषिविषये लुग् भवति । गर्गा । वसिष्ठा । अत्रय । विदेहा ॥ १२ ॥

देवतेदमर्थे ॥ १३ ॥

देवतार्थे इदमर्थे चोक्ताः प्रत्यया भवन्ति । इन्द्रो देवता अस्येति ऐन्द्र हविः । सोमो देवता अस्येति सौम्यम् । देवदत्तस्य इद दैवदत्तं वस्त्रम् १३

क्वचिद्वृयो ॥ १४ ॥

पूर्वपदोत्तरपदयोः क्वचिद्वृद्धिर्भवति । अग्निमरुतौ देवतेऽस्येति आग्निमारुतं कर्म । सुहृदो भाव सौहार्दम् । अत्र (भावे अण वक्तव्य *) ॥१४॥

णितो वा ॥ १५ ॥

उक्ताः प्रत्यया विषयान्तरे णितो भवन्ति । अजो गौर्यस्य स अजगुः शिवस्तस्येदं धनु आज-

---

१ 'स्यादामुष्यायणो मुख्यपुत्रे प्रज्ञातपुत्रक ।'

गव अजगव वा । कुमुदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य स॰ कुमुदगन्धि । तस्यापत्य स्त्री कौमुदगन्ध्या । 'आवतः स्त्रियाम्' इत्याप्प्रत्यय । श्वशुरस्याय श्वाशुर्यो ग्राम॰ । विष्णोरिद वैष्णवम् । गोरिद गव्यम् । कुलस्य इदं कुल्यम् ॥ १५ ॥

त्वन्मदेकत्वे ॥ १६ ॥

तव इद त्वदीयम् । मम इद मदीयम् ॥ १६ ॥

चतुरश्च लोप॰ ॥ १७ ॥

चतुर्शब्दस्य चकारस्य लोपो भवति य्यणीययो परत । तुर्य॰ तुरीय॰ ॥ १७ ॥

अन्यस्य दक् ॥ १८ ॥

अन्यशब्दस्य दगागमो भवति णीयप्रत्यये परे । अन्यस्येद अन्यदीयम् । अर्धजरत्या इद अर्धजरतीयम् ॥ १८ ॥

कारकात्क्रियायुक्ते ॥ १९ ॥

कारकादप्येते प्रत्यया भवन्ति क्रियायुक्ते कर्तरि कर्मणि चाभिधेये । कुङ्कुमेन रक्त वस्त्र कौङ्कुमम् । मथुरायाः आगतो माथुर॰ । ग्रामे भव॰ ग्राम्य । धुरं वहतीति धुर्य धौरेय ॥ १९ ॥

केन्येयेका ॥ २० ॥

क इन इय इक इत्येते प्रत्यया भवन्ति यथेप्सं । नित्य चैषा वैकल्पिकम् । कर्णाटे भवः

र्णाटकः कर्णाटको वा । ग्रामादागतस्तत्र जातो ग्रामीण' ग्राम्यः । सध्रीचिभवः सध्रीचीनः । समीचिभव समीचीन' । तिरश्चिभव' तिरश्चीनः॥२०॥

यलोपश्च ॥ २१ ॥

क्वचिद्यकारलोपो भवति । कन्याया जात' कानीनः । (नक्षत्रादण् वक्तव्यः) पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी । पौष्या भवः पौपीण ॥ २१ ॥

इयो वा ॥ २२ ॥

क्षतात् त्रायत इति क्षत्र । क्षत्रात् भव' क्षत्रियः क्षात्रः । शुक्राज्जात शुक्रियम् । इन्द्राज्जातं इन्द्रियम् । अक्षैर्दीव्यतीति आक्षिक । शब्दं करोतीति शाब्दिक । तर्कं करोतीति तार्किक । वेदे जाता वैदिकी स्तुति' ऋग्वा ॥ २२ ॥

किमादेस्त्यतनौ ॥ २३ ॥

किमादेरव्ययादेर्भवाद्यर्थेषु त्यतनौ प्रत्ययौ भवत' । कुत्र भवः कुत्रत्यः । कुतस्त्य' । ततस्त्यः । अद्य भवः अद्यतन । ह्यो भव' ह्यस्तनः । श्वो भवः श्वस्तन' । सदा भव सदातनः ॥ (दक्षिणापश्चात्पुर-

१ अन्यत्रापि यलोपस्थानानि—'मत्स्यस्य यस्य ङ्यां कारे ईपि चाऽगस्त्यसूर्ययो । तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्र अणियस्य विभजना ॥' मत्सी । आगस्तीय । दिक् आगस्ती इत्यादि ।
२ एवं दोषातनम् । सायंतनम् । चिरंतम् । पुरातनम् । प्राक्तनमित्यादि ।

सस्त्यण् वक्तव्य *) । दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्यः ॥ २३ ॥

स्वार्थेऽपि ॥ २४ ॥

उक्ताः प्रत्ययाः स्वार्थेऽपि भवन्ति । देवदत्त एव दैवदत्तक । चत्वार एव वर्णाः चातुर्वर्ण्यम् । चोर एव चौरः । (भागरूपनामभ्यो धेय स्वार्थेऽपि *) । भागधेय । रूपधेयः । नामधेयः ॥२४॥

अणीनयोर्युष्मदस्मदोस्तवकादि ॥ २५ ॥

अणीनयोर्युष्मदस्मदोस्तवकादय आदेशा भवन्ति । तव इदं तावकम् । मम इदं मामकम् । तावकीन मामकीन । यौष्माकः । आस्माकः । यौष्माकीणः । आस्माकीन' ॥ २५ ॥

वत्तल्ये ॥ २६ ॥

सादृश्ये वत्प्रत्ययो भवति । चन्द्रेण तुल्यं चन्द्रवन्मुखम् । घटेन तुल्य घटवदुदरम् । पटवत्कम्बलम् ॥ २६ ॥

भावे तत्वयण ॥ २७ ॥

शब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं भावस्तस्मिन्भावे त त्व यण् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । ब्राह्मणस्य भावो ब्राह्मणता । त्वयणौ नपुंसकलिंगौ भवतः । ब्राह्मणत्वं ब्राह्मण्यम् । सुमनसो भावः सौमनस्यम् ।

---

१ एवमेव [illegible] । तार्तीयीक । त्रैलोक्यं

सुभगस्य भाव सौभाग्यम् । विदुषो भावः वैदुष्यम् ॥ २७ ॥

समाहारे ता च त्रैगुणश्च ॥ २८ ॥

त्रयाणा समाहार· त्रेता । जनाना समूहो जनता । देवता । (कर्मण्यपि यण् वक्तव्य· *) ब्राह्मणस्य कर्म ब्राह्मण्यम् । राज्ञ इदं कर्म राज्यम् राजन्यम् ॥ २८ ॥

लोहितादेर्डिमन् ॥ २९ ॥

लोहितादेर्भावेऽर्थे इमन् प्रत्ययो भवति स च डित् । डित्त्वाट्टिलोप । लोहितिमा । अणोर्भावः अणिमा । लघोर्भावो लघिमा । महतो भावो महिमा ॥ २९ ॥

ऋ र इमनि ॥ ३० ॥

ऋकारस्य रेफो भवति इमनि परे । प्रथिमा । द्रढिमा । बहोर्भाव इति विग्रहे ॥ ३० ॥

बहोर्लोपो भू च बहो ॥ ३१ ॥

बहोरुत्तरेपामिमनादीनामिकारस्य लोपो भवति । बहोः स्थाने भूआदेश· । बहोर्भावो भूमा ॥ ३१ ॥

अस्त्यर्थे मतु· ॥ ३२ ॥

---

१ "पृथुमृदुदृढकृशेत्यादीनामिमनिरादेश" । प्रथिमा । म्रदिमा । द्रढिमा । क्रशिमा इत्यादि ।

नाम्नो मतु प्रत्ययो भवति अस्यास्मिन्वास्तीत्येतस्मिन्नर्थे । उकारो नुम्विधानार्थ । 'मृतो नुम्' । गोमान् श्रीमान् । गोमती श्रीमती आयुष्मान् ३२

अङ्कौ मत्वर्थे ॥ ३३ ॥

मत्वर्थे अङ्कौ प्रत्ययौ भवत । वैजयन्ती पताका अस्य अस्मिन् वा वैजयन्त प्रासाद । माया विद्यते अस्यास्मिन्वा मायिकः ॥ ३३ ॥

मान्तोपधाद्वत्विनौ ॥ ३४ ॥

मकारान्तान्मकारोपधादकारान्तादकारोपधाच्च वत्विनौ प्रत्ययौ भवतोऽस्त्यर्थे । किंवान् लक्ष्मीवान् भगवान् । धनी दण्डी छत्री । दृषद्वती भूमि । शमी कामी ॥ ३४ ॥

तडिदादिभ्यश्च ॥ ३५ ॥

एभ्यो वतुप्रत्ययो भवति । तडित्वान् विद्युत्वान् मरुत्वान् ॥ ३५ ॥

एतत्कियत्तद्भ्य परिमाणे वतु ॥ ३६ ॥

यत्तदोरा ॥ ३७ ॥

यत्तदोष्टेरात्व भवति वतौ परे । यावान् तावान् ॥ ३७ ॥

---

१ कश्चित्प्रत्ययो णिदपि । प्रज्ञास्यास्तीति प्राज्ञ । श्राद्ध ।

२ मकारग्रहणात् राजन्वान् । राजन्वती सौराज्ये । उदन्वान् ।

३ स्पष्टमिद सूत्रम्

किम क्रियश्च ॥ ३८ ॥

[1]किम्शब्दस्य किरादेशो भवति वतौ परे । व-
कारान्मस्य वकारस्य च यकारो भवति। कियान्१८

आ इश्चैतदो वा ॥ ३९ ॥

वतुप्रत्यये परे एतत्शब्दस्य आ इश् इत्येतावा
देशौ भवतः । 'गुरुः शिश्च' इति शिस्त्वात्कृत्स्नस्य
आ इति गुरुस्तथापि चकारादन्त्यस्यैव टेराकारा
देशो भवति न कृत्स्नस्य । यस्मिन् पक्षे आ इशादे-
शस्तस्मिन्पक्षे प्रत्ययस्य वकारस्य यकारादेशो भव-
ति । एतावान् इयान् ॥ ३९ ॥

तुन्दादेरिल ॥ ४० ॥

तुन्दादेरिलप्रत्ययो भवति अस्त्यर्थे । तुन्दमस्या
स्तीति तुन्दिल ॥ ४० ॥

औन्नत्ये दन्तादुर ॥ ४१ ॥

उन्नता दन्ता यस्य स दन्तुरः । (ऐश्वर्येऽर्थे स्वा-
दामिन्) स्वामी । (गन्धादेरिः) सुगन्धिः । आ
मगन्धि ॥ ४१ ॥

श्रद्धादेर्लु ॥ ४२ ॥

श्रद्धादेर्गणाल्लुप्रत्ययो भवति । श्रद्धास्यास्तीति
श्रद्धालुः । दयालुः । कृपालुः । (असमायामेधास्र-

---

१ 'चूडासिध्मादेश्च लप्रत्यय' । चूडाल । सिध्मल ।
। अंसल ।

ग्म्योऽस्त्यर्थे विन् वक्तव्यः *) तपोऽस्यास्तीति तपस्वी । मायावी । मेधावी । स्रग्वी ॥ ४२ ॥

वाचो ग्मिनि ॥ ४३ ॥

वाग्मी ॥ ४३ ॥

आलाटौ कुत्सितभाषिणि ॥ ४४ ॥

वाचालः । वाचाटः ॥ ४४ ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पदेश्यदेशीया ॥ ४५ ॥

ईषदपरिसमाप्तः सर्वज्ञः सर्वज्ञकल्पः । पटुदेश्यः कविदेशीयः ॥ ४५ ॥

प्रशंसायां रूप्यः प्रशस्ते ॥ ४६ ॥

प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूप्यः ॥ ४६ ॥

पाशः कुत्सायाम् ॥ ४७ ॥

कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः ॥ ४७ ॥

भूतपूर्वे चरट् ॥ ४८ ॥

दृष्टचरः । दृष्टचरी ॥ ४८ ॥

प्राचुर्यविकारप्राधान्यादिषु मयट् ॥ ४९ ॥

अन्नःप्रचुरः यस्मिन् सः अन्नमयो यज्ञः । मृन्मयो घटः । स्त्रीमयो जाल्मः । अमृतमयश्चन्द्रः । (तदधीते वेत्यत्राण् वक्तव्यः*)।व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः । शोभनः अश्वः स्वश्वः तं वेदेति सौवश्वः ॥ ४९ ॥

न संधिय्वोर्युट् च ॥ ५० ॥

संधिजौ य्वौ संधिय्वौ तयोः संधिजयोर्यकारव कारयो संबन्धिन स्वरस्य वृद्धिर्न भवति किंतु तयोर्युडागमो भवति । इट् उट् इत्येतावागमौ भवतः ॥ वर्णविश्लेषं कृत्वा यकारात्पूर्वमिकारः । वकारात्पूर्वमुकारः । (स्वरहीनं परेण संयोज्यम्) 'आदिस्वरस्य ञ्णिति वृद्धिः' वैयाकरणः ॥ ५० ॥

इतो जातार्थे ॥ ५१ ॥

लज्जित । पण्डित । तृपित ॥ ५१ ॥

तरतमेयस्विष्ठाः प्रकर्षे ॥ ५२ ॥

अतिशयेऽर्थे तर तम ईयसु इष्ठ इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अतिशयेन कृष्णः कृष्णतरः । अतिशयेन शुक्लः शुक्लतमः ॥ (ईयस्विष्ठौ डितावितिवक्तव्यौ*) 'डिति टेर्लोप' उकारो नुम्विधानार्थ । 'न्सम्महत—' इति दीर्घः । अतिशयेन लघुः लघीयान् लघिष्ठः लघीयसी । अतिशयेन पापः पापिष्ठ पापीयान् पापीयसी ॥ ५२ ॥

गुर्वादेरिष्ठेमेयस्सु गरादिष्टिलोपश्च ॥ ५३ ॥

१ गुरु २ प्रिय ३ स्थिर ४ स्फिर ५ उरु ६ बहुल ७ वृद्ध ८ दीर्घ ८ प्रशस्य १० बाढ ११ युवन् १२ अल्प १३ स्थूल १४ दूर १५ अन्तिकानां क्र-

१ गर २ प्र ३ स्थ ४ स्फ ५ वर ६ बंहि

७ ज्या ८ द्राघ ९ श्र १० साध ११ यव १२ कन १३ स्थव १४ दव १५ नेद एते आदेशा भवन्ति। अतिशयेन गुरु गरीयान् गरिष्ठ । गुरोर्भावो गरिमा। अतिशयेन प्रिय प्रेयान् प्रेष्ठः प्रेमा। अतिशयेन स्थिरः स्थेयान् स्थेष्ठ स्थेमा। अतिशयेन उरुः वरीयान् वरिष्ठ। अतिशयेन स्फिर स्फेयान्। अतिशयेन बहुलः बहीयान्। अतिशयेन वृद्ध। ईलोपो ज्याशब्दादीयस। ज्यायान् ज्येष्ठः। अतिशयेन दीर्घ द्राघीयान् द्राघिष्ठः द्राघीयसी द्राघिमा। प्रशस्यस्य श्रादेशः। श्रेयान् श्रेष्ठ। अतिशयेन बहुः भूयिष्ठ। दूरस्य दवादेश। दविष्ठ दवीयान् दवीयसी। क्षिप्रशब्दस्य क्षेपादेश। क्षेपिष्ठः। क्षेपीयान्। क्षुद्रशब्दस्य क्षोदादेश। क्षोदीयान् ॥ ५३ ॥

बहोरिष्ठे यि ॥ ५४ ॥

बहोरुत्तरस्येष्ठप्रत्ययस्येकारस्य यिर्भवति बहो स्थाने भूश्चादेश ईयस ईलोपश्च। भूयान् भूयिष्ठः ॥ (किमोऽव्ययादाख्याताच्च तरतमयोरारम्भकत्वम्। कुतस्तरा परमाणव। कुतस्तमा तेषामारम्भकत्व। उच्चैस्तरा गायति। पठतितमाम्। पचतितमाम् ५४॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक् टे ॥ ५५ ॥

उच्चकै। यक। सक। सर्वकः ॥ ५५ ॥

परिमाणे दघ्नादय ॥ ५६ ॥

परिमाणेऽर्थे दघ्नट् द्वयसट् मात्रट् इत्येते प्रत्यया भवन्ति। जानुदघ्नं जलम्। शिरोद्वयसम्। पुरुषमात्रम्। (द्वयोर्बहूनां चैकस्य निर्धारणे किमादिभ्यो डतरडतमौ वक्तव्यौ *) कतरो भवतां काण्व। कतमो भवता तान्त्रिकः। भवतोर्यतरस्तार्किकस्ततर उद्गृह्णातु ॥ ५६ ॥

सख्येयविशेषावधारणे द्वित्रिभ्यां तीय ५७

द्वयोः सख्यापूरक द्वितीयः। (त्रेः संप्रसारणम्) त्रयाणा सख्यापूरकः तृतीय ॥ ५७ ॥

षट्चतुरोस्थट् ॥ ५८ ॥

षष्ठ चतुर्थ ॥ ५८ ॥

पञ्चादेर्मट् ॥ ५९ ॥

पञ्चमः। सप्तम। अष्टम। नवम ॥ ५९ ॥

विंशत्यादेर्वा तमट् ॥ ६० ॥

विंशतितमः विंशति ॥ ६० ॥

विंशतेस्तिलोपो डिति ॥ ६१ ॥

विंशः विंशतम ॥ ६१ ॥

शतादेर्नित्यम् ॥ ६२ ॥

शततम ॥ ६२ ॥

[illegible] च । ६३ ।

एकादशः । द्विव्यष्टाना द्वात्रयोऽष्टा । द्वादश त्रयोदश अष्टादशः ॥ ६३ ॥

कतिकतिपयाभ्या थ ॥ ६४ ॥

कतिथः । कतिपयथ ॥ ६४ ॥

सख्याया प्रकारे धा ॥ ६५ ॥

द्विप्रकारं द्विधा चतुर्धा । गुणोऽण् च । द्वैधा त्रैधा । णित्वात् वृद्धिः । यस्य लोपः ॥ ६५ ॥

अतोम् ॥ ६६ ॥

द्वैधम् । त्रैधम् ॥ ६६ ॥

क्रियाया आवृत्तौ कृत्वस् ॥ ६७ ॥

पञ्चकृत्वः । सप्तकृत्वः ॥ ६७ ॥

द्वित्रिभ्यां सु. ॥ ६८ ॥

द्विः त्रिरुक्तम् ॥ ६८ ॥

बह्वादे शस् ॥ ६९ ॥

बहुशः । शतशः ॥ ६९ ॥

तयायटौ सख्यायाम् ॥ ७० ॥

द्वितयम् त्रितयम् । द्वयम् त्रयम् ॥ ७० ॥

शेषा निपाता कत्यादय ॥ ७१ ॥

का सख्या येषा ते कति ॥ ७१ ॥ इति तद्धितप्रक्रिया समाप्ता ॥

इत्यनुभूतिस्वरूपाचार्यप्रणीतसारस्वतस्य पूर्वार्धं सपूर्णम् ॥

निर्णयसागरयन्त्रालये विक्रेयानि संस्कृतपुस्तकानि

	मू	मा व्य
अष्टाध्यायीसूत्रपाठः—पाणिनिमुनिप्रणीत	०≈	०॥
धातुरूपावलिः—	०≈	०॥
प्राकृतमञ्जरी—श्रीमत्कात्यायनमुनिप्रणीतप्राकृतसूत्रवृत्तिः । संस्कृतनाटकादिप्रबन्धेषु नाट्यादिपात्रेषु प्राकृतभाषा प्रयुक्तोपलभ्यते । सा किल मागधी–शौरसेनी–पैशाचीत्यादिभेदेन षोढा प्रथिमता प्राचीनैः प्राकृतभाषाभ्यासरुचिः प्राकृतप्रकाशदीपिकाकारादिभिः । तेष्वन्यतमस्य प्राथमकल्पिकस्य प्राकृतभाषाभेदस्येयं परिचायिकास्मामिभूयसायासेन संपाद्य मुद्रिता ..	।	०॥
मध्यसिद्धान्तकौमुदी—वरदराजप्रणीता, इदं पुस्तकं विपुलटिप्पण्यादिभिरलङ्कृतं, मध्यकौमुदीगतसूत्राणामकारादिवर्णक्रमकोशसहितं च मुद्रितमस्ति	॥।	०=
चन्द्रिका—संस्कृतशब्दरूपावलि, गुणीकरकृता	।	०॥
लघुसिद्धान्तकौमुदी—श्रीवरदराजविरचिता टिप्पण्या सूत्राणामकारादिकोशेन च सहिता	०≈	०-
धातुरूपसंग्रह—अत्र प्राचीनपण्डितवरसुबोधशास्त्रिप्रणीता सोपसर्गधात्वर्थादर्शनामिका कारिका तद्व्याख्याः तदर्थनिरूपणं च विद्यते । तथा च धातूनां लक्षणानि अनुबन्धप्रयोजनानि उपसर्गार्थनिरूपणं च ।	०≈	०॥
शब्दरूपावलिः—गुणीकरकृता	०-	०॥
समासचक्रम्	०॥।	०॥
सारस्वतव्याकरण पूर्वार्धम्—सत्वरम्	१-	०-
सारस्वतव्याकरण वृत्तित्रयात्मकम्—इदं पुस्तकं प्राचीनहस्तलिखितपुस्तकान्येकीकृत्य संशोध्य च मुद्रितम् । केवलं बलबद्पुस्तकस्य	॥।	०=